ॐ

श्रीरत्नप्रभसूरिगुरुभ्यो नमः

श्रीमदुपकेशीयगच्छ के मुनि

ज्ञानसुन्दर विरचित

श्रीगयवरविलास

अर्थात

बत्तीस सूत्रों में मूर्तिसिद्ध

प्रकाशक

व आर्थिक सहयोगी

रानी गांव निवासी

शा. सुकनराज सागरमलजी पोरवाल

शा. हस्तिमल सरदारमलजी धनरेशा

शा. मोहनलाल सरदारमलजी धनरेशा

प्रथमावृत्ति 2000 द्वितीयावृत्ति 1000 तृतीय सं० 1000

वि. सं. 2055

कीमत 10 रुपये

श्रीरत्नप्रभसूरिगुरुभ्यो नमः

श्रीमदुपकेशीयगच्छ के मुनि

ज्ञानसुन्दर विरचित

श्रीगयवरविलास

अर्थात

बत्तीस सूत्रों में मूर्तिसिद्ध

प्रकाशक

व आर्थिक सहयोगी

रानी गांव निवासी

शा. सुकनराज सागरमलजी पोरवाल

शा. हस्तिमल सरदारमलजी धनरेशा

शा. मोहनलाल सरदारमलजी धनरेशा

——*

प्रथमावृति 2000 द्वितीयावृति 1000 तृतीय सं० 1000

वि. सं. 2055

कीमत 10 रुपये

प्रस्तावना

[प्रथम संस्करण की]

प्रिय पाठको !

प्रतिमा छत्तीसी में बत्तीस सूत्रों में प्रतिमा की सूचना मात्र दरशाई थी। उस पर स्थानकवासी साधु संतोकचन्दजी तथा 'ए, पी. जैन' लश्कर वाले ने अपनी अनादि प्रवृत्ति अनुसार कुयुक्तियां लगाकर बिचारे भद्रिक जोवों का दीर्घ संसार के पात्र बनाने का प्रयत्न किया है। इतना ही नहीं बल्कि मुझ पर भी वृथा आक्षेप और अनार्य-वचनों से गालियों की बौछार की है। परन्तु विचारने का विषय तो यह है कि श्री तीर्थंकरों, गणधरों तथा पूर्वाचार्यों के वचन का भी जिन्होंने तिरस्कार कर दिया है वे मुझे गालियां दें इसमें आश्चर्य ही क्या है ? लेकिन विद्वान् इनके लेख को पढ़ेंगे तो अवश्य कहेंगे कि यह कृतघ्नी दयामार्गियों (?) की दया (?) का सूचक है। यहां मुझे ज्यादा विवेचन करने की आवश्यकता नहीं है। साधु का धर्म क्षमा करने का ही है। इसलिए इन नादानों की बाल चेष्टा पर ख्याल न करके केवल उपकार बुद्धि से ही इस पुस्तक को प्रारम्भ करता हूं।

पुस्तक लिखने का प्रयोजन

प्रतिमा छत्तीसी में लिखा हुआ एक एक अक्षर आगम अनुसार है। तथापि आधुनिक समय में सम्यग् ज्ञान शून्य पुरुषों ने स्वकपोल कल्पित अनेक विकल्प उठाए हैं। उनके लिए 32 सूत्रों का मूलपाठ व अर्थ से अच्छी तरह समाधान के साथ ही 'ए. पी. जैन' की कुयुक्तियों का खण्डन स्पष्ट बतलाया गया है, मानें न मानें अख्तयार उन्हीं के। अस्तु।

तत्त्वरसिक-तत्त्व खोजी पुरुषों से निवेदन है कि ऊपर लिखे 'ए. पी. जैन' महाशय के लेख और हमारे लेख की आदिको से अन्त तक समालोचना करें। ताकि सत्या - सत्य का निर्णय हो जावे। कहा भी है "बुद्धेः फलं तत्त्व विचारणं च"।

एक बात और भी सुनाता हूँ कि जब ये (स्थानकवासी)लोग तेरा पंथिओं से चर्चा करते हैं तब तो हिंसा को गौण कहकर धर्म कार्य में शुभ परिणाम की मुख्यता बतलाते हैं। नदी की मच्छीयों को तालाब में पहुंचाने में एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के अनन्त जीवोंको हिंसा होती है। तो भी परिणाम शुद्धि से धर्म-पुन्य मानते हैं। लेकिन जब जिन प्रतिमा के पूजन का वर्णन आवे तब ये (स्थानकवासी) तेरा-पंथियों के बच्चे बन बैठते हैं। हिंसा हिंसा पुकार के भगवान की भक्ति का निषेध करते हैं।

प्रिय ! सच बात तो यह है कि कोई भी स्थानकवासी 32, 45 या 84 आगम में यह तो बतलावें कि जिन प्रतिमा की वन्दना पूजना से अमुक साधु या श्रावक नारकी में गया । सो तो किसी सूत्र में है नहीं । न आज तक कोई ऐसा प्रमाण किसी स्थानकवासी ने दिया है ।

साधु श्रावक ने जिन प्रतिमा वन्दी-पूजी है वो अब हम 32 सूत्र में दिखाते हैं ।

सज्जनों से निवेदन करता हूं कि मुझे गृहवास में संस्कृत का अभ्यास नहीं था । फिर मैंने पहले स्थानकवासीओं के पास दीक्षा ली । उनके अन्दर ऐसा बन्द रखा कि साधु को व्याकरण नहीं पढ़ाना इसीसे व्याकरण पढ़ने को मेरी इच्छा अपूर्ण ही रही । इसी से इस पुस्तक में ह्रस्व-दीर्घ आदि की भूलें रह गई होगी तो सज्जन कृपा करके सुधार कर हमें सूचना देंगे तो उपकार मानते हुए स्वीकार करेंगे । दूसरे संस्करण में वे भूलें सुधारी जावेगी ।

वीर संवत् 2443 —मुनि ज्ञानसुन्दर

॥ श्री महावीराय नमः ॥

अथ श्री गयवर विलास

अर्थात्

बत्तीस सूत्र में सिद्ध मूर्ति पूजा

प्यारे पाठको ! अब हम प्रतिमा छत्तीसी में कहे हुए सूत्रों से प्रतिमा व प्रतिमा पूजन की सिद्धि करके बतलाते हैं। एक चित्त से ध्यान देकर पढ़ो-

आदि मंगल पांच अक्षर

दोहा

अरिहंत सिद्ध ने आयरिय, उवज्झाया अणगार।
पंच परमेष्ठि वांदीने, स्तवन रचुं शुभसार ॥1॥

अर्थ—अरिहत आदि पंच परमेष्ठि को नमस्कार करके स्तवन आरम्भ करता हूँ।

चार निक्षेपा जिन तणा, सूत्रों में वंदनीक।
भोला भेद जाणे नहीं, जिन आगम प्रत्यनीक ॥1॥

अर्थ—सूत्र में भगवान का चार निक्षेपा—

नाम जिणा जिण नामा, ठवणजिणा पुण जिणंदपडिमाओ।
दव्व जिणा जिण जीवा, भाव जिणा समवसरणत्था ॥1॥

श्री वीर प्रभु का चारों निक्षेपा वन्दनीक हैं ।

(1) वीर प्रभु का नाम लेना सो नाम निक्षेपा । उसे वन्दनीक सब जैनी मानते हैं। इसके बारे में विवेचन करने की आवश्यकता नहीं है ।

(2) वीर प्रभु की प्रतिमा स्थापना निक्षपा है। यह भी वंदनोक है । इसी को आधुनिक नामधारी जैनो (स्थानकवासी-तेरापंथी) नहीं मानते । परन्तु अपने गुरु-गुरुणी की 'प्रतिमा' "समाधि" 'पगलिया' फोटू को मानते हैं । जैस मारवाड़ में जैतारण के पास गिरिगांव में स्थानकवासी साधू हरखचन्दजी की तथा रुण (जिला-नागौर) में हजारीमलजी म०की पाषाण की प्रतिमा है। लुधियाना म मोतीरामजी साधू की समाधि । अम्बाला में लालचन्दजी की समाधि और स्थानकवासी साधू-साध्वीयों के तथा तेरापंथी स्व० आचायं श्री तुलसी व विद्यमान आचार्य महाप्रज्ञजी के संख्या बन्द फोटू मौजूद हैं । उनका तो भक्तिभाव उत्साह पूर्वक करते हैं । जिनकी गति का भी निश्चथ नहीं है । और श्री परमेश्वर जो कि निश्चय ही मोक्ष में पधारे हैं। उनकी स्थापना (मूर्ति) की भक्ति पूजा - करने में हिचकते हैं । अहो आश्चर्य ! आश्चर्य ! । बाजे बाजे ऐसा भी कह देते हैं कि " मूर्ति पत्थर है । अजोव है । इसको भक्ति में क्या फायदा है ?' । ऐसा कहना अनंत संसार वृद्धि का कारण है । क्योंकि श्री गणधर महाराज ने तो मूर्ति को जिनप्रतिमा फरमाई है । ठवणा सच्चा कहा है । उसे पत्थर कहने वाले को उन्हीं के पूज्य जयमलजी ने " प्रतिमा ने प्रतिमा कहे, भाटो कहे ते भ्रष्ट " कहा है ।

सूत्र में "अरिहंताणं आसायणाए" अरिहन्तों की आशातना

वर्जने का कहा है। आशातना करने से बोधि-बीज का नाश होता है। हम पूछते हैं कि तुम स्थानकवासी अरिहंत देव को छोड़कर माताजी, पितरजी, रामदेवजी, खेतपाल बावजी, सती माता आदि लौकिक देव की मानता करते हो, सैंकड़ों कोस जाते हो और वांदते पूजते हो। बतलाओ ! वे सब मूर्ति हैं या देव हैं ? यदि मूर्ति है तो वह पत्थर की है। आप वहाँ जाकर पत्थर के पास प्रार्थना करते हो या देव के पास ? यदि पत्थर के पास करते हो तो पत्थर तो तुम्हारे घर में भी बहुत हैं। यदि देव के पास करते हो तो घर बैठकर ही करना चाहिए। अब आपको बेधड़क कहना पड़ेगा कि "मूर्ति द्वारा देव से प्रार्थना करते हैं।"

भोले भाईयो ! लौकिक देव की मूर्ति द्वारा देव से प्रार्थना करके धन - पुत्र आदि प्राप्ति की लौकिक आशा को सफल करना चाहते हो, तो लोकोत्तर देव श्री तीर्थंकर की मूर्ति द्वारा प्रार्थना करके अपनी लोकोत्तर - स्वर्ग - मोक्ष प्राप्ति की आशा को सफल करने में क्यों शरमाते हो ? और सुनो ! स्थापना निक्षेपा वंदनीक है। जब श्री तीर्थंकर भगवान समवसरण में पूर्व दिशा सम्मुख बिराजते हैं और शेष तीन दिशा में भगवान की मूर्ति स्थापन की जाती है। तब तीन दिशा में भगवान की वाणी श्रवण करने वाले सभी उन मूर्ति को देखकर अपने मन में यही मानते हैं कि भगवान हमारे सम्मुख बिराजे हैं।

प्रिय ! यह बात सभी जैनी जानते हैं। कदाचित् आप कहो कि इसमें वंदने का अधिकार नहीं है। तो सुनो ! सूत्र उववाइ में इसका खुलासा है। देखिए ! "अप्पेगइआ वंदणवत्तियाए अप्पेगइआ पूअणवत्तियाए"। इसी से सिद्ध हुआ कि स्थापना निक्षेपा (मूर्ति) वंदनीक है। और सुनो ! पांडव चरित्र

में द्रोणाचार्य की मूर्ति के सामने अभ्यास करके एकलव्य भील ने अर्जुन के बराबर धनुर्विद्या हासिल की थी। प्रिय ! इस बात को स्वमत - परमत वाले सभी जानते हैं। इससे ज्यादा क्या प्रमाण चाहिए।

(3) वीर प्रभु का अतीत अनागत सो द्रव्य निक्षेपा । वह भी वंदनीक है। अब पहिले यह समझना होगा कि द्रव्यनिक्षेपा कहते किसे हैं ? वर्त्तमान वस्तु का अतीत अनागत काल में जो रूपान्तर है, उसी को द्रव्य निक्षेपा कहते हैं। जैसे श्री वीर प्रभु के अतीत काल में तीर्थंकर पणे का निश्चय हो गया तब से छद्-मस्थ 12 वें गुणठाणे तक द्रव्य तीर्थंकर । वह अनागत। तथा निर्वाण के पीछे भी द्रव्य तीर्थंकर। वह अतीत। यह सब जैनिओं को वंदनीक है।

(4) भाव निक्षेपा वीर प्रभु। के-34 अतिशय, पैंतीस वाणी, आठ प्रातिहार ये सब वन्दनीक हैं।

(1) नाम निक्षेपा-सूत्र उववाइ में वन्दनीक कहा है। देखो ! "महाफलं खलु अरिहंताणं भगवंताणं नाम गोयस्स वि" सवणयाए यों नामनिक्षेपा वन्दनीक है।

(2) स्थापना निक्षेपा - वन्दनीक है। आचारांग, ठाणांग, समवायांग, भगवती. ज्ञातासूत्र, उपासकदशा, उववाई, राय-पसेणीय, जीवाभिगम, उत्तराध्ययन आदि बहुत सूत्रों में लेख है। इसी किताब में आगे अच्छी तरह से खुलासा करेंगे। प्रिय ! यह किताब ही स्थापना निक्षेपा (मूर्ति) को वन्दनीक-पूजनीक साबित करने हेतु लिखी गई है। सो अग्रे देख लेना।

(3) द्रव्य निक्षेपा-वन्दनीक है । 1. नंदी सूत्र में देवर्द्धि गणि खमाश्रमण ने वीर प्रभु के 24 पाट पर हुवे आचार्यों को वन्दना की है । अब भी देवलोक में गये गुरुओं को सभी जैनी वांदते हैं । 2. आवश्यक सूत्र में आदिनाथ भगवान के साधूओं ने चौवीसत्था (लोगस्स) में तेवोस तीर्थंकरों के द्रव्य निक्षपा को वन्दना करी है। लोगस्स में 'अरिहंते कित्तइस्सं चउवीसंपि केवली' इससे भी द्रव्य-निक्षेपा वन्दनीक है । और सुनो ! आवश्यक सूत्र साधु प्रतिक्रमण का पाठ" 'उसभाइ महावीर पज्जव साणाणं' तथा 'नमुत्थुणं' वर्तमान काल में बोलते हैं। इससे भी द्रव्य निक्षेपा वन्दनीक साबित होता है । इत्यादि.

(4) भाव निक्षेपा-उववाई सूत्र आदि में वन्दनीक है। यों भगवान के चारों निक्षेपा आगम प्रमाण से वन्दनीक हैं । फिर भी जो भोले भाई कदाग्रह के वशीभूत होकर वीतराग के वचनों का उत्थापन करते हैं, उन्हें शास्त्रकार प्रत्यनीक कहते हैं । देखिये ! सूत्र ठाणांग ठाणा-3 "**सुयं पडुच्च तओ पडिणिता पण्णत्ता-सुयपडिणीते अत्थ पडिणीते तदुभय पडिणीए ।6।**

इसका अर्थ—सूत्र आश्रयी तीन प्रकार के प्रत्यनीक कहे हैं । (1) सूत्र नहीं मानने वाला सूत्र का प्रत्यनीक (वैरी) है । (2)अर्थ को नहीं माने वह अर्थ का प्रत्यनीक (वैरी) है । (3) सूत्र-अर्थ दोनों को नहीं माने वह उभय यानि दोनों का प्रत्यनीक है ।

प्रिय मित्रो ! आप आत्मकल्याण करना चाहते हैं तो सूत्र अर्थ की भली प्रकार से आराधना करें ।

बत्तीस सूत्र के मांयने, प्रतिमा को अधिकार ।
सावधान हुइ सांभलो, पामो समकित सार ।।3।।

अर्थ—बत्तीस सूत्रों में प्रतिमा का अधिकार यानि वर्णन है। उसे सावधान होकर सुनें। जिससे समकित की प्राप्ति होगी। समकित ही जगत में सार पदार्थ है।

समकित विण चारित्र नहीं, चारित्र विण नहीं मोक्ष।
कष्ट लोच किरिया करी, जन्म गमायो फोक ॥4॥

अर्थ—समकित के बिना चारित्र नहीं होता है। और चारित्र के बिना मोक्ष नहीं है। देखिए, उत्तराध्ययने अ० 28

नत्थि चरित्तं सम्मत्तविहूणं, दंसणे उ भइयव्वं।
सम्मत्तचरित्ताइं जुगवं, पुव्वं च सम्मत्तं ॥29॥
नादंसणिस्स नाणं, नाणेण विना न हुंति चरण गुणा।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमुक्खस्स निव्वाणं।30।

अर्थ सुगम है। भावार्थ ऊपर लिखा है। तथा जिसके समकित नहीं है,उसकी लोचादिक कष्टक्रिया कर्मबन्ध की हो हेतु है। देखिए ! उत्तराध्ययने अध्ययन 20 गाथा 41-

चिरंपि से मुंडरुई भवित्ता, अथिरव्वये तव नियमेहिं भट्ठे।
चिरंपि अप्पाणं किलेसइत्ता,न पारए होइ हु संपराए ॥

अर्थ - सुगम है। भावार्थ-बहुत काल तक लोचादिक कष्ट करे और जो व्रत तप आदि में अस्थिर है, वह बहुत काल तक आत्मा को क्लेश पहुंचा कर भी संसार के पार न पहुंचे।

दीर्घ दृष्टि से विचार करो तो दंसणविवन्नगा का संसर्ग करना भी दुर्गति का कारण है। कहा भी है — उ० अ० 20 गाथा 44

विसं तु पीय जह कालकूडं, हणइ सत्थं जह कुग्गहियं
एसो विधम्मो विसओववन्नो, हणइ वेयाल इवाववन्नो

अर्थ–सुगम है। भावार्थ-विष और शस्त्र के प्रयोग से तो एक भव में मरण होता है। परन्तु कुगुरु की संगति चतुर्गति संसार में भ्रमण कराती है। इसलिए उक्त संगत को छोड़कर शुद्ध समकित धारी का संसर्ग करो। जिससे अपना कल्याण हो।

(। ढाल 1 ।। आदर जीव क्षमागुण आदर। — यह तर्ज)

प्रतिमा छत्तीसो सुनो भवि प्राणी।
सूत्रों के अनुसारजी ।टेक।
आचारांग दूजे श्रुतस्कंधे, पन्दर में अध्ययन मुझारजी।
पांच भावना समकित केरी, नित बंदे अणगारजी।। प्र० ।।

अर्थ—श्री आचारांग श्रु० 2 अध्ययन 15 में दो प्रकार की भावना (1) प्रशस्त (2) अप्रशस्त कही है / सो नीचे लिखता हूं। चौदह पूर्वधारी धर्म धुरधर आचार्य श्री भद्रबाहु स्वामीकृत निर्युक्ति के मूल पाठ में प्रथम अप्रशस्त भावना —

यदुक्तं पाणिवह मुसावदए, अदत्त मेहुण परिग्गहे चेव।
कोहे माणे माया लोभे य, हवन्ति अप्पसत्था। 45।

भावार्थ—भावना दो प्रकार की है। प्रशस्त भावना और अप्रशस्त भावना। प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह तथा क्रोध मान माया लोभ ये अप्रशस्त भावना जाननी।

दूसरी प्रशस्त भावना पाठ

दंसण णाण चरित्ते तव-वेरग्गे य होइ उ पसत्था ।
जाय जहा ताय तहा, लक्खण वुच्छ सलक्खणओ ।45।
तित्थगराण भगवओ, पवयण पावयणि अइसइड्ढीण ।
अहिगमण णमण दरिसण, कित्तण संपूयणा थुणणा ।333
जम्माभिसेय णिक्खमण, चरण णाणुप्पया य णिव्वाणे ।
दिय लोअ भवण मन्दर, णंदीसर भोम णगरेसु ।334
अट्ठावय मुंज्जिते, गयग्ग पयए य धम्मचक्के य ।
पास रहा वत्तणगं चमरुप्पायं च वंदामि ।335।
गणियं णिमित्त जुत्ती, संदिट्ठी अवितहं इमं णाणं ।
इय एगंत मुवगया, गुणपच्चइया इमे अत्था ।336
गुण माहप्पं इसिणामकित्तणं, सुरणरिंद पूया य ।
पोराण चेइयाणि य, इय एसा दंसणे होइ ।337

भावार्थ—दर्शन ज्ञान चारित्र तप वैराग्यादिक में प्रशस्त भावना जानननी । तिन में प्रथम दर्शन भावना । दर्शन से(समकित) की शुद्धि होती है । उसका वर्णन शास्त्र कार करते हैं—

तोर्थंकर भगवन्त, प्रवचन, आचार्यादि युग प्रधान, अतिशय-ऋद्धिमान, केवलज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानो, अवधिज्ञानी, चोदह पूर्व-धारी तथा आमर्षोषधि आदि ऋद्धिवाले, इनके सन्मुख जाना, नमस्कार करना, दर्शन करना, गुणोत्कीर्त्तन करना, गन्धादिक

से पूजन करना, स्तोत्रादिक से स्तवन करना इत्यादि दर्शन भावना जाननी। निरन्तर इस दर्शन भावना के भाने से दर्शन शुद्धि होती है। तथा तीर्थंकरों की जन्म भूमि में, निष्क्रमण-दीक्षा, ज्ञानोत्पत्ति और निर्वाण भूमि में तथा देवलोक विमानों के मन्दर-मेरुपर्वत के ऊपर, नन्दीश्वर आदि द्वीपों में तथा पाताल भवनों में जो शाश्वते चैत्य जिन प्रतिमा हैं उन्हें मैं वन्दना करता हूँ तथा इसी तरह शत्रुंजय-गिरि, गिरनार, गजाग्रपद-दशार्णकूट-तक्षशिला नगरी में धर्म चक्र तथा अहिच्छत्रा नगरी जहां धरणेन्द्र ने पाश्वनाथ स्वामी की महिमा की थी, रथावर्त्त पर्वत जहां श्री वज्रस्वामी ने पादपोपगमन अनशन किया था। और श्री महावीर स्वामी की शरण लेकर चमरेन्द्र ने उत्पतन किया था इत्यादि स्थानों में यथा संभव अभिगमन, वन्दन, पूजन, गुणोत्कीर्त्तनादि क्रिया करने से दर्शन शुद्धि होती है। तथा "गणित विषय में बीज गणितादि - गणितानुयोग का पारगामी है, अष्टांग निमित्त का पारगामी है, दृष्टिवादोक्त नानाविध युक्ति द्रव्यसंयोग का जानकार है, इसको समकित से देवता भी चलायमान नहीं कर सकते हैं, इनका ज्ञान यथार्थ है, ये जैसी आगाही करे वैसा ही होता है, इत्यादि प्रावचनिक यानि आचार्य आदि की प्रशंसा करने से दर्शन शुद्धि होती है। इसी तरह और भी आचार्यादिक के गुण माहात्म्य का वर्णन करने से, पूर्व महर्षिओं के नामोत्कीर्तन करने से, सुरेन्द्र-नरेन्द्र आदि द्वारा की गई उनकी पूजा का वर्णन करने से तथा निरन्तर चैत्यों की पूजा करने से इत्यादि पूर्वोक्त क्रिया करने वालों के तथा पूर्वोक्त क्रिया की वासना से वासित अन्तः करण वाले प्राणी के सम्यक्त्व की शुद्धि होती है। यह प्रशस्त (दर्शन समकित संबंधी) भावना जाननी।

इस लेख से स्पष्ट मालुम हो गया होगा। ज्यादा खुलासा आगे करेंगे। इस पर श्री शीलाङ्काचर्यकृत टीका में विस्तार किया है। परन्तु पुस्तक बढ़ जाने के भय से वह यहां नहीं लिखा है। विद्वानों के लिए इतना ही प्रमाण काफी है। अगर किसी को देखना हो तो सूत्र देखकर समाधान कर लें।

सूयगडांग सूत्र श्रुतस्कन्ध 2 अध्ययन 6 में भी ;—

दूजे सूयगडांगे छट्ठे अध्ययने, आर्द्र नाम कुमारजी।
प्रतिमा देखी ज्ञान ऊपनो, पाम्यो भवनो पारजी ॥प्र०॥

अर्थ—आर्द्रकुमार को भी आदिनाथ प्रभु की शांत मुद्रा वाली प्रतिमा देखकर जाति स्मरण ज्ञान हुआ था।

इस बारे में देखिए निम्नोक्त शीलाङ्काचार्य कृत टीका—

अन्यदाऽस्यार्द्रकपिता राजगृहे नगरे श्रेणिकस्य राज्ञः स्नेहाविष्करणार्थं परमप्राभृतोपेतं महत्तमं प्रेषयति, आर्द्रककुमारेणासौ पृष्टो यथा-कस्यैतानि महार्हाण्यत्युग्राणि प्राभृतानि मत्पित्रा प्रेषितानि यास्यन्तीति, असावकथयद् - यथा आर्यदेशे तव पितुः परममित्रं श्रेणिको महाराजः तस्यैतानीति, आर्द्रककुमारेणाप्यभाणि - किं तस्यास्ति कश्चिद्योग्यः पुत्रः ? अस्तीत्याह, यद्येवं मत्प्रहितानि प्राभृतानि भवता तस्य समर्पणीयानीति भणित्वा महार्हाणि प्राभृतानि समर्प्याभिहितं-वक्तव्योऽसौमद्वचनाद् यथाऽऽर्द्रककुमारस्त्वयि नितरां स्निह्यतीति, स च मह-

त्तमो गृहीतोभयप्राभृतो राजगृहमगात्, गत्वा च राजद्वारपालनिवेदितो राजकुलं प्रविष्टो, दृष्टश्च श्रेणिकः, प्रणामपूर्वकं निवेदितानि प्राभृतानि, कथितं च यथासंदिष्टं, तेनाऽप्यासनाशनताम्बूलादिना यथार्हप्रतिपत्त्या सम्मानितः, द्वितीये चाह्नयार्द्रककुमारसत्का न प्राभृतान्यभयकुमारस्य समर्पितानि कथितानि च तत्प्रीत्युत्पादकानि तत्संदिष्टवचनानि । अभयकुमारेणापि पारिणामिक्या बुद्धया च परिणामितं-नूनमसौ भव्यः समासन्नमुक्तिगमनश्च तेन मया सार्द्धं प्रीतिमिच्छतीति, तदिदमत्र प्राप्तकालं यदादितीर्थंकर प्रतिमासंदर्शनेन तस्यानुग्रहः क्रियत इति-मत्वा तथैव कृतं, महार्हाणि च प्रेषितानि प्राभृतानीति उक्तश्चासौ महत्तमो यथा-मत्प्रहितप्राभृतमेतदेकान्ते निरूपणीयं, तेनापि तथैव प्रतिपन्नं, गतश्चासावार्द्रकपुरं, समर्पितं च प्राभृतं राज्ञः, द्वितीये चाहन्यार्द्रककुमारस्येति, कथित च यथासन्दिष्टं, तेनाप्येकान्ते स्थित्वा निरूपिता प्रतिमा, तां च निरूपयत ईहापोहविमर्शनेन समुत्पन्नं जातिस्मरणं, चिन्तितं च तेन यथा-ममाभयकुमारेण महानुपकारोऽकारि, सद्धर्मप्रतिबोधत इति, ततोऽसावार्द्रकः संजातजातिस्मरणोऽचिन्तयत्-यस्य मम देवलोकभोगैर्यथेप्सितं संपद्यमानैस्तृप्तिर्नाभूत् तस्यामीभिस्तु-

च्छैर्मानुषैः स्वल्पकालीनैः कामभोगैस्तृप्तिर्भविष्यतीति कुतस्त्यमिति,एतत्परिगणय्य निर्विण्णकामभोगो यथोचितं परिभोगमकुर्वन् राज्ञा संजातभयेन मा क्वचिद्या-स्यति अतः पञ्चभिः शतै राजपुत्राणां रक्षयितुमारेभे, इत्यादि ।

भावार्थ—एक दिन आर्द्रकुमार के पिता ने दूत के हाथ राजगृही नगरी में श्रेणिक राजा को प्राभृत (भेंट) भेजी । आर्द्र-कुमार ने श्रेणिक राजा के पुत्र अभयकुमार के साथ स्नेह करने के वास्ते उसी दूत के हाथ भेंट भेजी । दूत ने राजगृह में जाकर श्रेणिक राजा को भेंट नजर की । राजा ने भी दूत का यथायोग्य सम्मान किया । और दूत ने आर्द्रकुमार के भेजे प्राभृत अभयकुमार को दीए तथा स्नेह पैदा करने के वचन कहे । तब अभयकुमार ने सोचा कि निश्चय ही यह आर्द्रकुमार भव्य है । निकट मोक्ष गामी है । जो मेरे साथ प्रीति इच्छता है । फिर अभयकुमार ने बहुत प्राभृत सहित प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव स्वामी की

प्रतिमा आर्द्रकुमार के लिए भेजी और दूत के द्वारा कहलाया कि इस प्राभृत को एकान्त में देखें । दूत ने जाकर यथोक्त कथन करके प्राभृत दे दीया । प्रतिमा को देखते देखते आर्द्रकुमार को जाति-स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ । धर्म में प्रतिबद्ध हुआ । अभयकुमार को याद करता हुआ वैराग्य से काम भोगों में आसक्त नहीं होता हुआ रहता है । पिता ने जाना कि कभी यह कहीं चला न जावे इस वास्ते पांच सौ सुभटों से पिता हमेशा उसकी रक्षा करता है । इत्यादि ।

इस पर ए० पी० जैन ने हमारे लिए अभव्य आदि शब्द कह कर इतना परिश्रम उठाया। वह श्रम यदि जिनेन्द्र देवों की भक्ति में लगाता तो महान लाभ उपार्जन करता।

भीले भाई! आपने गयवरचंद शब्द का जो अर्थ किया तथा अभवी आदि कहा तो जब मैं करीब 9 वर्ष आपके (स्थानकवासी) टोलों के अन्दर रहा था। तब तो भव्य था- आचारवान् था। अब मैंने आपके टोलों को छोड़कर सत्य धर्म अंगीकार कर लिया तो अभवी हो गया। आपकी प्रवृत्ति की हम क्या तारीफ करें! आपकी गलीच गालियों का उत्तर विद्वानों के लिए इतना ही काफी है।

आचारांग सूयगडांग की दो गाथा नहीं मानने में गालियों के सिवाय शास्त्र का कुछ भी प्रमाण नहीं दिया है। भद्रक जीवों को भ्रम में डालने के लिए "मूल-टीका मूल-टीका" ही की पुकार की है।

बन्धुओ! इस समय में विद्यादेवी (ज्ञान) के प्रचार से विद्वानों की संख्या बढ़ी है, आपकी पुकार पर कोई ध्यान नहीं देगा। विद्वान लोग यह विचार अवश्य करेंगे कि चौदह पूर्व के धनी भद्रबाहु स्वामी जिन नहीं पण जिन सरीखे, उनके बचनों का नन्दिसूत्र में सूत्र सम कहा है। यह बात जैनियों को निःशंक मानना ही पड़ेगा। दूसरी बात यह है कि जब पास में दूसरा पक्ष खड़ा होता है तब पक्षपात भी खड़ा होता है। मूर्ति उत्थापक का जन्म वि० सं० 1531 में हुआ था।

मेरा हो सच्चा अच्छत्व है। सच्चा वह मेरा होना चाहिए।

प्रिय ! यह बात स्वमत परमत वाले सभी जानते हैं। श्री भद्रबाहु स्वामी वीर सम्वत् 170 में हुए। जिन को करीब 1831 वर्ष का फासला हो गया। इतने वर्ष तक तो श्री भद्रबाहु स्वामी के वचन में शंका करने वाला कोई नहीं हुआ। अब भी जो पढ़े लिखे विद्वान स्थानकवासी हैं, वे तो जैसे तीर्थंकर के वचन वैसे ही श्री भद्रबाहु स्वामी के वचनों को मानते हैं। लेकिन जो अनपढ सम्मूर्छिम पंडित बनकर मन में शका करते हैं उन महोदयों से हम पूछते हैं कि आपको आचारांग सूत्र की सम्पूर्ण निर्युक्ति में क्षंका है या जहां मूर्ति का जिक्र है वहां शका है ? तब तो कहना हा पड़ेगा कि सम्पूर्ण निर्युक्ति में शंका नहीं है। सिर्फ मूर्ति के अधिकार में शंका है। तब तो प्रगट मालूम होगा कि आपको मूर्ति से ही द्वेष है। जिससे सम्पूर्ण निर्युक्ति को माननी और मूर्ति का अधिकार आवे वहां शंका करना !

जब निर्युक्ति-टीका नहीं माननी तो बतलाओ समकित के बिना चारित्र हो सकता है या नहीं ? जो समकित के बिना चारित्र नहीं होवे तो समकित की भावना सिद्ध हो चुकी। आर्द्र-कुमार कौन था ? किस नगरी में रहता था ? किस निमित्त से प्रतिबोध (ज्ञान) पाया ? यह सब मूलसूत्र से बतलाना चाहिए।

यदि टीका से बताओगे तो टीका में तो स्पष्ट शब्दों में प्रतिमा लिखा है। जो कि हम लिख आए हैं। फिर भी यदि मूल सूत्र ही मानने का आप का हठ है, तो अव्वल यह तो फरमाए कि मूलसूत्र के सिवाय आप कुछ मानते हैं या नहीं ? यदि नहीं मानते हैं तो हमारी बनाई हुई सिद्ध प्रतिमा मुक्तावली प्रश्न तीजे में 100 प्रश्न मूल 32 सूत्र के ही पूछे हैं। उनका उत्तर मूल सूत्र से दें। 卐

卐 प्रश्नमाला में पूछ हुवे प्रश्नों के उत्तर भी मूलसूत्र से दें।

सवाल—हम यहाँ पर आप से इतना ही पूछते हैं कि मूल सूत्र मानते हो तो "णमो णरिहताणं" यह जैनियों का प्रथम सूत्र है। इसका अर्थ करें ।

जवाब—अजी ! इसका अर्थ तो सीधा है।

सवाल—अच्छा। मूल सूत्र से अर्थ फरमावें।

जवाब—णमो = नमस्कार। अरि = वैरी। हंताणं = हनन करने वालों को।

सवाल—अरिहंत कौन से वैरी का हनन करते हैं ?

जवाब—अजी ! अरिहन्त कर्म वैरी का हनन करते हैं।

सवाल—मूल सूत्र में तो कर्म शब्द की गन्ध भी नहीं है। फिर आप किस शब्द का अर्थ कर्म करते हैं ? आप तो मूल सूत्र ही मानते हैं।

जवाब—अजी साहब ! सम्बन्ध मिलाने के लिए तो उपयुक्त शब्द जोड़ना ही पड़ता है / नहीं तो सम्बन्ध ही टूट जावे।

सवाल—मित्र ! तो फिर टीका मानने में क्यों हिचकते हो। दीर्घ दृष्टि से बिचारो। टीका उसी का नाम है जो सम्बन्ध को मिलावे। देखो ! आचारांग सूत्र में पच महाव्रत को भावनाएं कही हैं। और समकित के बगैर महाव्रत होते नहीं हैं। इसलिए ही भद्रबाहु स्वामी ने सम्बन्ध पर समकित की भावना कही है तथा आर्द्रकुमार के पिछले भव का सम्बन्ध कहा है। उन भगवान का वचन सत्य मानोगे तभी आपका कल्याण होगा।

यदि आपको प्रतिमा से ही द्वेष है तो खुल्लं खुल्ला कह देना चाहिए कि 'सूत्र में तो लिखा है, लेकिन हम नहीं मानेंगे

तो आप से हमको इतना परिश्रम तो नहीं करना पड़ता। फिर भी यह हमेशा स्मरण रहे कि अब आपकी मायावृत्ति चलने की नहीं है। लो ! आपको मूल सूत्र तो मान्य है न ? देखो ! इसमें भी नट मत जाना —

सूत्र भगवतीजी श० 25 उ० 3

सुत्तत्थो खलु पढमो, बीओ निज्जुत्ति मिसिओ भणिओ।
तइओ निरवसेसो, एस विहि होइ अणुओगे ॥

भावार्थ – प्रथम सूत्रार्थ देना । दूसरा निर्युक्ति सहित देना और तीसरा निर्विशेष (सम्पूर्ण) देना। यह विधि अनुयोग यानि अर्थ कथन की है। इस सूत्र पाठ में तीसरे प्रकार की व्याख्या में भाष्य चूर्णी और टीका का समावेश होता है।

इस मूल सूत्र में निर्युक्ति मानने का कथन है। यदि उसे नहीं माना तो आपने भगवतीजी को भी नहीं मानी ! कहो ! अब भी आप के दिल में कुछ भ्रम है ? आप ने लिखा कि जड़ वस्तु की भक्ति तुम को जड़ बनायेगी इत्यादि। यह लेख आपका कितने दर्जे पर पहुंचा है ? भगवान तो फरमाते हैं कि चेतन का जड़ तीन काल में नहीं होता है और हम जो वीतराग की उपासना करते हैं सो हमें दृढ़ विश्वास है कि वीतराग हम को भी अपने सरीखा बना देंगे । परन्तु आप भी पुस्तक पन्ने की उपासना करते हो ! अस्तु, आगे लिखा है कि प्रतिमा देख के तुम को ज्ञान तो नहीं हुआ इत्यादि। मित्र ! मुझे तो क्षयोपशम माफिक ज्ञान है। मगर तप संयम तो आप भी मानते हो, तो फिर तुम्हारे गुरूजी को ज्ञान नहीं उत्पन्न होने से तप संयम को निष्फल मानोगे क्या ? यह आप की अज्ञान दशा है।

देखो ! प्रतिमा के दर्शन से आर्द्रकुमार को ज्ञान उत्पन्न हुआ सो हम लिख आये हैं।

आगे आचारांग और प्रश्न व्याकरण का अधूरा पाठ लिख के हिंसा हिंसा पुकारी है इत्यादि।

अव्वल तो यह सूत्र पाठ ही असम्बन्ध अधूरा लिखा है। सम्पूर्ण देखना हो तो हमारी बनाई सिद्ध प्रतिमा मुक्तावली प्रश्न चौथे में मूल सूत्र अर्थ सम्बन्ध से है। यह पाठ अनार्य मिथ्या दृष्टि के वास्ते फरमाया है। यद्यपि अज्ञान के मारे जैनी नाम धरा के भी मंदबुद्धियों की पंक्ति में मिलने का प्रयत्न किया है। हे प्रिय ! जैनी न तो हिंसा में धर्म मानते हैं न जैनियों के आगम में हिंसा में धर्म कहा है, न जैनी हिंसा का उपदेश करते हैं आप झूठा कलंक जैनियों पर लगाते हैं न जाने आप की क्या गति होगी !

अब हम हिंसा अहिंसा का खुलासा करते हैं। सो ध्यान दे के सुनो—

卐 तीर्थंकर ओघा मुहपत्ति नहीं रखते हैं।

—समवायांग सूत्र

卐 गौतम स्वामी मुहपत्ति नहीं बाँधते थे।

—विपाक सूत्रे-दुःख विपाक

卐 विक्रम संवत् 1708 में लवजी स्वामी ने मुहपत्ति बांधने की नई प्रथा चलाई है।
संक्षेप गाथा ग्यारवी का अर्थ में

अहिंसा और हिंसा की समालोचना

	[जैनी]		[स्थानकवासी]
	जैनियों में धर्म उन्नति शासन उन्नति, जाति उन्नति आगम या परम्परा अनुसार प्रवृत्ति में जो हिंसा होती है, उसे जैनो स्वरूप हिंसा मानते हैं।		स्थानक वासीयों की मान्यता मुजब धर्म उन्नति शास्त्र उन्नति या जाति उन्नति को प्रवृत्ति में जो हिंसा होती है उससे स्थानकवासी बोधि बीज का नाश या मंदबुद्धि या नरक गामी मानते हैं।
1	साधु ग्राम नगर विहार धर्म शासन उन्नति के लिये करे उसमें हिंसा होती है।	1	साधु ग्राम नगर विहार शासन उन्नति के लिये करे उसमें हिंसा होती है।
2	साधु को रस्ते जाते नदी आवे तो आज्ञा मुजब उतरते हैं, इसमें हिंसा होती है। पूर्ववत्	2	साधु को रास्ते जावते नदी आवे तो उतरते हैं इसमें हिंसा होती है।

3	साधु को गोचरी जाना, पडि - लेहण करना, गुरु को वन्दन करना, जिन आज्ञा है। इसमें भी हिंसा है। पूर्ववत्	3	साधु को गोचरी जाना पडिलेहण करना गुरु को वन्दना करना, इसमें भी हिंसा है
4	साधु को वरसते वर्षात में ठल्ले-मात्रा जाना इसमें भी आज्ञा है, हिंसा अवश्य होती है। पुर्वबत्	4	साधु को वरसते वर्षाद में ठल्ले जाना इस में भी हिसा अवश्य होती है।
5	श्रावक कान्फ्रैन्स में हजारों लोग इकट्ठे होते हैं शासन उन्नति करते हैं। पूर्बवत् (हिंसा)	5	श्रावक कान्फ्रेन्स में हजारों लोग इकट्ठे होते हैं। शासन उन्नति करते हैं। (हिंसा)
6	शास्त्र लिखने में, छपाने में शासन उन्नति है। पूर्वबत् (हिंसा)	6	शास्त्र लिखने, छपाने में भी शासन उन्नति है। (हिंसा)

7	कॉलेज पाठशालादि में धर्म शिक्षा देनी शासन उन्नति । पूर्ववत् (हिंसा)	7	कॉलेज पाठशालादि में धर्म शिक्षा देनी शासन उन्नति । (हिंसा)
8	बोर्डिंग 1 हुन्नरशाला 2 गुरुकुल 3 बाला-श्रम 4 आदि पूर्ववत् (हिंसा)	8	बोर्डिंग 1 हुन्नरशाला 2 गुरुकुल आदि हिंसा)
9	मन्दिर बनाते हैं ।	9	स्थानक पौषध शाला बनाते हैं । (हिंसा)
10	भगवान की मूर्ति कराते हैं व साधुओं का फोटू उतारते हैं ।	10	अपना गुरु की मूर्ति समाधि पत्र लिया साधुओं का फोटू कराते हैं ।
11	तीर्थ यात्रा शत्रुजय, गिरनार, शिखरजी, केशरीयाजी आदि जाते हैं ।	11	कितनेक तीर्थयात्रा करते हैं, कितनेक नहि करते हैं ।वे भैरु, भवानी, रामदेवजी आदि को ध्याते हैं ।
12	जिन प्रतिमा की भक्ति करते हैं ।	12	गुरु गुरुणी को समाधि पगलिया आदि की भक्ति करते हैं ।

+ मारवाड़ गिरी गाम में । हरखचन्द साधु की पत्थर की मूर्ति है ।

13	दूर देश में साधु को वंदने को जाते हैं।	13	दूर देश में साधु को वन्दने को जाते हैं।
14	गुरु को लेने को सामने जाते हैं। नगर प्रबेश भी अति उत्साह से कराते हैं। साधु को पहुंचाने भी जाते हैं।	14	गुरु को लेने को सामने जाते हैं नगर प्रवेश अति उत्साह से कराते हैं। व साधु को पहुंचाने जाते हैं
15	पर्युषण में तपस्या और देव गुरु की अधिक भक्ति करते हैं।	15	पर्युषण में तपस्था व सार्धमिक की भक्ति करते हैं और भट्ठी भी अधिक जलाते हैं।
16	दीक्षा महोत्सव करते हैं।	16	दक्षा महोत्सव करते हैं।
17	साधु का मृत महोत्सव करते हैं।	17	साधु का मृत महोत्सव करते है।
18	स्वामी वच्छल करते हैं।	18	दया पालते हैं। लड्डू खाते हैं।
19	साधु अपना लेख छापे में छपाते हैं।	19	साधु अपना लेख छापे में छपाते हैं।

शासन की उन्नति की समालोचना

	[जैन]		[स्थानकवासी]
1	रजस्वला धर्म (M. C) पाल : हैं।	1	रजस्वला नहीं पालते हैं कितने ही तो कहते हैं कि 'फोडा फूठा है' इसमें क्या ?
2	शास्त्रजी की आशातना टालते हैं और बहुत भक्ति करते है।	2	शास्त्रजी को सिराने दे देते हैं और भक्ति पूजा नहिं करते हैं। अशुचि हाथ भी लगा देते हैं।
3	माधु रात्री पानी रखते हैं।	3	रात्री को पानी नहीं रखते हैं और दावा करते हैं।
4	कपड़ा आदि पानी से धोते हैं।	4	कपड़ा आदि नो पाणी 卐 से भी धोते हैं
5	सूतक मृतक के घर का आहार पाणी नहीं लेते हैं।	5	सूतक मृतक के घरका आहार पानी ले लेते हैं।

卐 ा ागो = पिशाब

6	क्षत्रीय, वैश्य, ब्राह्मण को शिष्य बनाते हैं। इनका आहार लेते हैं।		इनके सिवाय नाई, जाट, कुम्हार मेणा, तेली आदि को भी लेते है। इनके घर का आहार भी खाते हैं।
7	हलवाईयों के कढ़ाईयों का धोवण नहीं लेतेहैं।	7	बाजार में हलवाईयों की कढ़ाईयों का बाजे कुत्तादिक व झूठा पानी भी ले लेते हैं।
8	साधु गृहस्थी के घर में धर्मलाभ देके प्रवेश करते हैं।	8	साधू चोर की तरह चुपचाप गृहस्थ के घर में जाते हैं। वहां पर ढ़की उघाड़ी बहु बेटियों को देखते हैं। इसमें कितनी शासन की हीलना होती है !

[जैनी] दया-हिंसा की समालोचना [स्थानकवासी]

1	द्विदल का आहार नहि लेते हैं।	1	कितनेक तो विदल को समझते ही नहीं जो समझते हैं वो लोलुपिपणा से या कायर वृत्ति से छोड़ नहीं सकते। उसमें असंख्य जीव उत्पन्न होते हैं तो भी वो खाते हैं।

2	अभक्ष अंनत का गृहस्थी को पच्चखाण कराते हैं और आप भी नहीं खाते हैं।	2	अभक्ष अंनतकाय नहीं खाने का गृहस्थीयों को उपदेश करते हैं और आप खाते हैं।
3	वासी आहार जा रस चलित जिसमें तार बनता है ऐसा नहीं लेते हैं।	3	वासी आहार लेते हैं। और ललिया (तार) जीव नहीं वरजते हैं।
4	गृहस्थी का झूठा आहार नहीं लेते हैं।	4	गृहस्थी का झूठा आहार लेते हैं।
5	बतनां का झूठा पानी जिस में विद्दल आदि हो बो नहीं लेते हैं।	5	वर्तनों का झूठा पाणी ले लेते हैं, और दावा करते हैं
6	गरम पाणी पीते हैं। और निर्बद धोवण भी।	6	कच्चे पाणी के घड़े में राख, आटा, दूद ओले कोलडूनाँ खेके पा लेते हैं तो कित-नेक गरम पाणी भी पीते हैं।
7	मुहपति हाथ में रखते हैं बोलते समय यतना के लिये मुँह आगे रखते हैं।	7	मुँह-पती से रात दिन मुहबन्धा रखते है और उनके श्लेष्म नाक के मेल आदि से असंख्य सम्मच्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं।

मुंह बंधन संवत् 1708 में लवजो ढुंढ़क साधु ने नया पन्थ चलाया है।

प्रिय ! ये तो नमूना लिखा है। ऐसे तो अनेक बोल हैं। जितनी शासन की निंदा हो रही है सब इन्हीं लोगों की ऊपर, लिखी प्रवृत्ति का ही कारण है। अब स्वयं विचार कर लेवें कि हिंसा धर्मी कौन हैं? क्या आपने समवायांग सूत्र नहीं सुना? आप अपराध दूसरे पर डालने से महान मोहनीय कर्म बंधता है। आज आपके गुरु लुंकाजी जगत में नहीं हैं, तब ही आप हिंसा की गठर चला रहे हो। लुंकाजी ने मोहनी कर्म के उदय से जिन प्रतिमा उत्थापी थी परन्तु तुम्हारे सरीखी हिंसा की प्रवृत्ति नहीं चलाई थी। जो कि तुम्हारे सरीखी हिंसा की प्रवृत्ति रखता तो कृतघ्नी पंथ कभी नहीं चलता।

प्रश्न — क्यों महात्माजी ! लुंकाजी और अभी के स्थानकवासीयों की प्रवृत्ति एक है या भिन्न-भिन्न हैं ?

उत्तर — पाठको ! इन की प्रवृत्ति में जमीन आसमान का फर्क है।

प्रश्न — कृपया फर्क हमें भी सुनाइये।

उत्तर — लो सुनो ! परन्तु चमकना मत। नमूना सुनाता हूं।

लुंकाजी की प्रवृति व अभी के स्थानकवासीयों की प्रवृति

	[लुंकाजी]		[आज के स्थानकवासी]
1	व्याकरण को व्याधिकरण मानते थे ।	1	व्याकरण, न्याय, कोश व अलकार आदि पढते हैं ।
2	32 सूत्र के सिवाय कुछ नहीं मानते थे और नहीं वांचते थे ।	2	टीका, भाष्य, चूर्णि निर्युक्ति आदि बांचते हैं ।
3	रास चौवीसीयों को सावद्य के कह के नहीं वांचते थे ।	3	रास चौवीसीयां मोटे पूज्य भी बांचते हैं ।
4	अन्य मत के पंडितों से नहीं पढते थे ।	4	अब अन्य मत के पंडितों से पढते हैं ।
5	मुहपत्ति हाथ में रखते थे ।	5	दिन रात मुख बांधते हैं । यह प्रवृत्ति लवजी से चली है ।
6	विदल आहार नही खाते थे ।	6	द्विदल खाते हैं और दावा करते हैं ।

7	गोचरी की झोली साधु हाथ की कलाई पर लाते थे। आहार गृहस्थी को नहीं दिखाते थे।	7	अभी हाथ में लाते हैं घर घर में आहार दिखाते हैं। कोई जगह पात्रे का आहार देखके बालक रोने लग जाते हैं।
8	तीर्थ यात्रा को नहीं जाते थे।	8	संख्या बंध लुंकागच्छ के साधु, यति, श्री-पूज्य, श्रावक आदि जाते हैं।
9	स्थानक-धर्मशाला भी नहीं कराते थे।	9	विशेष गामों में स्थानक-धर्मशाला होते हैं।
10	साधु चद्दर की छाती पर गांठ नहीं लगाते थे।	10	अब खूब कसके गांठ लगाते हैं और चोल-पट्टा फकीर टका तमलकी परे पहनते हैं।
11	संख्या बंद श्रावक दूर देशों में साधु को वन्दने को जाना और चातुर्मास पर्युषणा में भट्टियां चलानी इत्यादि बातें नहीं थीं इत्यादि अनेक बोल हैं पुस्तक बढ जाने के भय से नहीं लिखा है।	11	संख्या बंध श्रावक दूर देश में साधु को वदने जाते हैं। चौमासा-पर्युषण में भट्टियां चलाते हैं। कोई गांव में तो बिचारे साधारण गृ[illegible] पर हजारों आदमी जिमाने का दण्ड पड़ जाता है।

अब भी आपकी कलई खुलने में कुछ कसर रही है ? इससे ज्यादा देखना हो तो अन्य पुस्तकों में देखलेना। ढूंढक चरितावली या कुमति कुठार में देखो। आयंदा से कुयुक्तियां करने की प्रवृत्ति छोड देना। ये आप के हित के लिये ही मैंने अपना अमोल समय इस कार्य में लगाया है। स्थानकवासी समाज पर मेरा किंचित मात्र भी द्वेष भाव नहीं है। बल्कि मेरे पर जितना स्थानक-वासियों का उपकार है, वह हमेशा मानता हूं, प्रति उपकार के लिये ही यह परिश्रम उठाया है।

॥ इति प्रथम द्वितीय गाथार्थ ॥

ठांणायंगे चौथे ठाणे, सत्य निक्षेपा च्यारजी।

दसमे ठाणे ठवणा सच्चे, इम भाख्यो गणधारजी

अर्थ — ठाणायंग 4 उ० 2 पाठ - चउव्विहे सच्चे पण्णते तं जहा- नाम सच्चे, ठवणा सच्चे, दव्व सच्चे, भाव सच्चे। टीका- सत्य सूत्र नामस्थापनासत्ये सुज्ञाते, नाम सत्य मनुपयुक्तस्य सत्यमपि, भावसत्यं तु।

स्थानवासियों का माना हुआ टब्बा अर्थ-चार प्रकारें सत्य साचूं कह्यो ते कहेवे-नाम सत्य ते रिषभादि 1. स्थापना सत्य भगवंतनी प्रतिमा 2 द्रव्य सत्य जे जीव जिन थासे 3. भाव सत्य ते प्रत्यक्ष बैठा जिन 4.

ठाणांग सूत्र ठाणा 10 में दस प्रकार का सत्य। ठवणा सच्च टीका —C स्थापना सत्य यथा अजिनोपि जिनोऽय - मणाचार्यो-

व्याचार्योयमिति) स्थानकवासियों का माना हुआ टब्बा अर्थ (ठवणा) जिन के विरहे जिनपडिमा आचार्य के विरहे स्थापना आचार्य ते सत्य। इम गणधर भगवान भाख्यो।

जैसा सूत्र में वैसा प्रतिमा छत्तीसी में। तथापि ए.पी. ने लिखा है कि "गयवर चन्द ने लिखा वैसा सूत्र में नहीं है" यह लिखना सत्य है या मिथ्या है! पाठक वर्ग स्वयं विचार लें।

आगे ठवणा-सत्य को व्यवहार-सत्य कहके लकड़ी घोडे के हेतु लगाये हैं इत्यादि विचार करो। साधु लकडी के घोडे को घोडा कहते हैं तो सत्यभाषा है। तो फिर वीतराग देव की प्रतिमा को वीतराग कहने में क्यों शरमाते हैं और मूर्ति को पत्थर जड कर के संसार वृद्धि क्यों करते हो?

(च्यार निक्षेपा वंदनीक। दूजे दुहा के अर्थ में देख लेना) आगे एक आचार्य का दृष्टांत दिया है। उनका मतलब तीन निक्षपा शून्य बतलाया है।

प्रिय पाठको! (ए. पी)भगवान का नाम,स्थापना, द्रव्य, तीन निक्षेपा को तो शून्य कहते हैं और चोथा भाव निक्षेपा इस काल में है नहीं। तब तो भगवान का शासन ही विच्छेद हो गया। वाह रे नारिजक! लै सुन! मैं निक्षप का दृष्टांत सुनाता हूं—

एक विदेशी ने लापरचन्द स्थानकवासी से पूछा कि मुझे किसी महात्मा के पास धर्म श्रवण करना है। तब (स्थान० ने)कहा कि हमारे साधु पूज्य पकोडीमलजी दिल्ली तरफ विचरते हैं। विदेशी ने कहा कि मैं उन्हें नहीं जानता हूं, वे कैसे हैं? उनका

नक्शा (फोटू) हो तो बतलाओ। (स्था०) हम स्थापना नहीं मानते हैं, जावो! हर किसी ग्राम में पूछ लेना। तब विदेशी वहां से चला। रास्ते में पूछते 2 एक नगर में कूडापंथो साधू पकोडीमलजी था। खबर होने से विदेशी उनके पास गया कूडा पंथी साधु ने उपदेश दे के अपना शिष्य बना लिया। अस्तू।

दूसरा दृष्टांत-एक विदेशी सत्यचन्द्र ने किसी जैनी से कहा कि मुझे किसी महात्मा से धर्म सुनना है। जैनी-सिद्धाचलजी के आस पास धर्म धुरंधर जैनाचार्य श्रीधर्म प्रभाकर सूरि विचरते हैं। उनके पास पधारो। विदेशी-वो आचार्य कैसे हैं? तब जैनो एक पुस्तक विदेशी को दी "इसको पढ़ो" (विदेशी)पुस्तक हाथ में लेके देखने ही प्रथम आचार्य महाराज का शांत मुद्रा वाला फोटू दृष्टि-गोचर हुवा इतने ही से सम्यकत्वरत्न की प्राप्ति हो गई। आगे देखे तो आचार्य का गृहस्थावास को बाल अवस्था का चरित्र और फोटू। आगे व्रतधारी का चरित्र और फोटू देखा। ये तीनु अवस्था देख के सिद्धाचलजी की तरफ चला। मार्ग में आचार्य का नाम पूछता पूछता एक नगर में जा पहुंचा। वहां एक धर्म प्रभाकर नाम का आचार्य सुनकर बिदेशी उनके पास गया। परन्तु मुंह वधा देख के पीछा आने लगा। तब ए-पी. सरीखा कदाग्रही विदेशी को कहने लगा। "अजी! भाई धर्म प्रभाकर आचार्य यही है" विदेशी बोला नहीं जी नहीं, उन आचार्य का फोटू मेरे पास है सो देखो "फेर देखने से सब का चित्त शान्त हो गया। (विदेशी) आगे गिरनार की गुफा में वह नाम और फोटू वाला आचार्य ध्यानरूढ देख वन्दना नमस्कार कर सेवा से उपस्थित हुआ फिर आचार्य महाराज का ध्यान समय पूर्ण होने से आसन

पर विराजे। इतने में दो आदमी आचार्य के पास आये। आचार्य महाराज ने अति गंभीरता व मधुर ध्वनि से वीतराग प्रणीत धर्म सुनाया। लेकिन उन मिथ्यात्वियों को कुछ भी असर न हुआ। तब विदेशी ने विचारा कि "निक्षेपा तो निमित्त कारण है" उपादान कारण तो अपनी आत्मा ही है। तो पण निमित्त कारण की आवश्यकता है, जिससे मैंने इसी आचार्य महाराज द्वारा स्थापना से ही धम को प्राप्त किया है और 2 आदमियों को भाव निक्षेपे से भी धर्म प्राप्त नहीं हुआ। अस्तु

पाठको ! दोनों दृष्टान्तों को ध्यान में रक्खो। प्रथम दृष्टांत में तो कारण स्थापना को नहीं मानो तब भाव कार्य को ही खो बैठे। जो कि कारण स्थापना(फोटू)पास में होता तो कूंडा पंथियों में मिल के दीर्घ संसारी न बनता अस्तु

दूसरा दृष्टांत का सारांश-पास में (फोटू) था तो मुंह बंधे के जाल से बच गया और आचार्य की चार अवस्था और च्यार निक्षेपों के स्वरूप को ही जान लिये ओर कारण कार्य का भेद को भी समझ लिये। ये कथन सूत्र में है। ज्यादा विवेचन नहीं किया है। आगे सवैया कुंडल्या लिख के बहादुरी दिखाई है। इस वास्ते मेरे पास 100-200 मौजूद है। परन्तु बहुत जनों का दिल दुक्खे वैसा लिखना उचित नहीं समझता हूं।

आगे लिखा है "तू क्यों फजीती करवाता है" इत्यादि। बंधव ! फजीती सत्य की होवे के असत्य की ? जो की है तो आप का लेख पढके चीमटी भर शक्कर आप के मुंह में हर कोई दिये सिवाय नहीं रहेगा। सत्य का व्याख्यान तो श्री सीमन्धर स्वामी आप का मुखारविन्द ने हमेशा करते हैं। इति ।। 3 ।।

अंजन गिरि ने दधिमुखा, नंदीश्वर द्वीप मोझारजी ।
बावन मंदिर प्रतिमा जिनको, वंदे सुर अणगारजी ।। प्र 4 ।।

अर्थ—ठाणांग सूत्र के चौथे ठाणे उ. 2 में बहुत विस्तार है। सम्पूर्ण लिखे तो ग्रन्थ बढ जावे, इसीसे जितना प्रयोजन है, सो पाठ:- **चत्तारि अजणग पव्वया पण्णता**

चत्तारि जिण पडिमाउ सव्वरयणामयाउ संपलिअंकणिसणाउ थूभाभिमुहोउ चिट्ठंति तं जहा - रिसभा वद्धमाणा चंदाणणा वारिसेणा पण्णता चत्तारि सिद्धायअणा चत्तारि दहिमुहगपव्वया पण्णत्ता)

इत्यादि मूल सूत्र का पाठ है। ज्यादा खुलासा देखना हो तो सूत्र जीवाभिगमजी से नंदीश्वर द्वीप का अधिकार में अंजनगिरि 4 पुष्करणी बावी 16 दधिमुखा 6 रतिकरा 4 राज्यधानी 16 सिद्धायनन 20 जिन प्रतिमा 2160 मुख-मंडप 20 पिछाधर मंडप 20 स्थुभ स्थयपासे जिन पडिमा 320 चैत्यवृक्ष 80 इन्द्रश्वण 80 80 पुष्करणी 80 वनखंड 320 मणुगलिया 48000 गांमाणसिया 48000इतनाअधिकारमूलपाठमें है, और32कनकगिरिसिद्धायतन जिन पडिमा सहित वृत्ति में है। प्रिय ! यह बात जैनी अच्छी तरह से जानते हैं। 52 चैत्यालय नंदीश्वर द्वीप में हैं। उनको देवता अट्ठाई चौमासी संवत्सरी या जिन कल्याणक में यात्रा करते हैं। इसका लेख जीवाभिगम जंबूद्वीपन्नत्ति आदि सूत्रों में प्रसिद्ध है। शायद आपको अणगार वांदवा में शंका हो तो सुन लीजे, भगवती सूत्र श. 20 उ. 9 चारण में मुनि का पाठ—

यत्— बीइएणं उप्पाएणं णंदिसरे दीवे समोसरणं करेइ ।
तहिं चेइआइं बंदइ वंदइत्ता.....

विस्तार 7 वीं गाथा के अर्थ में देखो ।

अर्थ – जंघाचारण मुनि दूजे उत्पात में नंदीश्वर द्वीप में समोसरण करे । वहां के चैत्य (प्रतिमा) को वन्दे ।

बन्धव ! ये गोल मोल है कि मूल सूत्र का पाठ है ? आगे लिखा है कि "सूत्र पाठ नहीं लिखेगा तो अनन्ता तीर्थंकरों का चोर" इत्यादि ।

प्रिय बन्धव ! अनन्ते तीर्थंकर गणधर के फरमाये हुए सूत्र पाठ मैंने लिख दिया है । इसको नहीं माने वो ही चोर है । सत्य का डंका रणकार करता ही रहेगा इति ।। 4 ।।

थापनाचारज चोथे अंगे, द्वादश ठाणामाँयजो ।
सत्तरमे समवायंगे जंघाचारण,प्रतिमा वंदन जायजो ।प्र.5।

अर्थ – समवायग सूत्र का बारमा समवायंग का पाठ -

यत्- दुवालसावत्ते किरियकम्मे प. तं. दुओणयं जहाज.यं किरिकम्मं बारसावत्तं चोउ सिरे तिगुत्ते दुपबेसं एगनिक्खमणा

अर्थ—स्थानकवासियों का माना हुआ टब्बा अर्थ- बारे आवर्त मांहे ते कृतिकर्म-वांदणा कहा । भगवंत श्री वर्द्धमान स्वामी ए ते कहे छे बे अवनत बे वेला मस्तक नमाडवो, गुरुनी थापना कीजे। तेह थकी अ उठ हाथ वेगला रही पडिक्कमोए, अ उठ हाथमांहि अव-ग्रह कहिये । उभाथका इच्छामि खमासमणो कहिए बिहुं वांदणे बिहुं वेला मस्तक नमाडिये । पछे अवग्रहमाँहि आवीये । यथा-

जातमुद्रा-जन्म अवसरे बालक नी परे बलंटाभरिहाथ जोडि रहो कृतकर्म वांदणा 12 आवर्त छ छ वेला गुरू ने पगे वांदणा कीजे। अहो कायं काय ए पाठ कहि बिहुवेला थइ 12 आवर्तन थया। चोसरां 4 वेला गुरुनै पगे मस्तक नमाडीये। अणंगुत्ती मन वचन कायानी गुप्त कीजै उपदेश बेवेला वांदणाने अर्थे अवग्रहमांहि आवेने एक निखमण अवग्रहबहिरि पहले वांदणे एकवेला निकली बीजी वेला गुरू पगे बेठा ज वणीस माफिक एह पाठ कहा एह समवायंग वृत्तिनो भाव। इसमें स्थापना आचार्य खुलासे कहा है।

जंघाचारण विद्याचारण मुनि जिनप्रतिमा वांदणे को जाते हैं। सूत्र समवायंग ठा. "17" मूल पाठ। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसम रमणिज्जाउ भूमिभागाउ सातिरेगाइ सत्तरस जोयण सहस्साइ उड्ढं उप्पेइत्ता ततो पच्छा चारणाण तिरियगती पावर्तति।

अर्थ—टीका में बहुत विस्तार है।

अर्थ—स्थानकवासियों का माना हुआ टब्बा।

अर्थ—इणी ए रत्नप्रभा पृथ्वी विषे घणी रमणीक समोभूमि भाग छ तेह थकी भाभेरी बे कोस अधिक सतरे जोजन सहस्र लगे उचे उत्पतलि उडीने ए तले लवण समुद्रनी शिखालगे उंचा उप्पत-ति तिवारे पछे जंघाचारण विद्याचारणनीतिरछीगति पर्वत तले तिरछी द्विपे रुचिक द्वीपे एम नंदीश्वरद्वीपे जिन प्रतिमा वांदिवा जाई जैसा सूत्रार्थमें था वैसा ही प्रतिमा छत्तीसी में लिखा है।

तदपि (ए.पी.) कहते हैं " गुरु की वंदना देतो स्थापनाचार्य नहीं हैं इत्यादि "

बंधव ! किसी गुरु गम से सूत्र सुणो जो स्थापनाचार्य न हो तो गुरु आदेश किसका लेवे वन्दना किसको देवे ? (अहो कायं काय संफासं) किस को कहे ?

(पूर्व पक्ष) हम थापना नहीं माने, साक्षात् गुरु की वंदना करें।

(उत्तर पक्ष) तुम्हारे गुरूजी वदना किस को करे ?

(पूर्व पक्ष) हमारे गुरुजी ईशान खूण में वंदना करते हैं।

(उत्तर पक्ष) खूणा तो अजीव है।

(पूर्व पक्ष) नहीं जी ईशान खण से सीमन्धरस्वामी को वन्दना कर प्रतिक्रमणादि की आज्ञा मांग लेते हैं।

(उत्तरपक्ष) भरत क्षत्र में शासन किस का है ?

(पूर्व पक्ष) महावीर स्वामी का है

(उत्तर पक्ष) फर आज्ञा सीमन्धर स्वामी की कैसे लेते हैं ? अव्वल तो यह बतावें - आप के माने हुवे 32 सूत्र में सीमन्धर-स्वामी का नाम किस सूत्र में है ? दूसरा महाविदेह के साधू का कल्प ही अलग है। प्रतिक्रमण का भी नेम नहीं। पाप लागे तो करे। तीसरा वें भगवान् करोड़ो कोस पर विराजते हैं, उनकी काया का स्पर्श कैसे करते हैं ?

(पूर्व पक्ष) भगवान तो दूर बिराजे हैं, परन्तु हम ईशान खूणे में भगवान का आरोप कर वदना कर लेते हैं।

(उत्तर पक्ष) लो! आखिर तो रस्ते पर आना ही पड़ा। जब परोक्ष में आरोप (थापना) मानते हो, जिससे तो प्रत्यक्ष में ही

मानना ठीक है। जिससे भगवान की आज्ञा और आप का नेम दोनों भी रह जावे, अस्तु।

पाठको ! ठाणांग ठांणा 10 तथा समवायंग दोनों सूत्र में स्थापनाचार्य का लेख था। सो हमने बता दिया हैं, और आवश्यक-सूत्र में प्रतिक्रमण विधि में भी स्थापनाचार्य कहा है। 4 ज्ञान 14 पूर्वधारी श्री भद्रबाहु स्वामी ने स्थापना कुलक में स्थापनाचार्य का विधि का प्रतिपादन अच्छी तरह से किया है। वो कुलक भी मोजूद है। अस्तु।

आगे जंघाचारण मुनि जिन प्रतिमा वन्दन को जावे, जिस का सूत्र अर्थ हम लिख आये हैं। उस पर (ए. पी.) ने गालियों का ही मजा उड़ाया है और मुझे अभव्य श्रेणी में दर्ज किया इत्यादि। पाठको ! जरा शास्त्र का प्रमाण देके गालियां देता तो वाचक वर्ग को कुछ सन्तोष होता। बेचारे भव्य अभव्य का निर्णय केवली भगवान सिवाय कोई नहीं कर सकते हैं ये बात जैन सिद्धान्त में प्रसिद्ध है। आप और आप के गुरुजी गोशाला जमालीवत् केवली बण गये हो तो जैसा उनका दरजा वैसा ही आप का समझा जावेगा। जैन शासन अखबार का (स्वप्न) का लेख पढ़के ही आपकी कदाग्नि भडकी हो। बंधव ! कदाचित् (स्वप्न) सत्य हो जावे तो वो श्री केवली महाराज के मुखारविंद का फरमाया हुआ है। खैर ! आप मुझे अभवी कहें, परन्तु मैं तो सब जीवों को कहता हूं कि आप जिन शासन के रसिक हो के अपनी आत्मा का कल्याण करें ॥ 5 ॥

शतक तीजो उद्देसो पहेलो, भगवती में सारजी।
चमर इन्द्र सरणा लइ जावे, अरिहंत बिंब अणगारजी
प्रतिमा० ॥6॥

अर्थ भगवती सूत्र शतक 3 उ० 1 चमर इंद्र के अधिकार में तीन सरणा पाठ –

यत्-णणत्थ अरहंते वा अरहंत चेइयाणि वा अणगारे वा भावियप्पाणो णीसाए उड्डं उप्पयइ जाव सोहम्मे कप्पे ।

भावार्थ· शक्रेन्द्र विचार करता हुआ "चमरइंद्र भी अपनी शक्ति से सुधर्म कल्प देवलोक में नहीं आ सके सूत्र अब इतना अवश्य है कि अरिहंत 1 अरिहंतों की प्रतिमा- 2 अणगार भावित आत्मा का धणी की, नेश्राय (सरणों) से ऊर्द्ध लोक में आ सकता है।"

ए तीनों शरणों में से कोई एक शरणा लेके चमरइंद्र ऊर्द्धतक में जा सकता है। परन्तु ये नहीं समझना की एक सरणा लेके जावे तो बाकी-2 सरणा निष्फल हैं।

तीन शरणो में से चमरइन्द्र अरिहंत वीर प्रभु का शरणा लेकर गया है और जिन प्रतिमा तथा अणगार का सरणा लेके भी जा सकते हैं।

जैसा अरिहंतों का प्रभाव और आसातना है तैसे ही जिन-प्रतिमा का प्रभाव और आशातना है। इसीसे ही 3 सरणा, असातना 2 ही कही है। पाठ: सू 331

यत्-महा दुक्ख खलु तहारूवाणं अरहंताणं । भगवंताणं अणगाराणं य अच्चासायणयाए ।

अर्थ सुगम है। इसी का मतलब जो अरिहंतों की आशातना है। भेरू आदि की मूर्ति को पूठ देने में भेरू की आशातना होती है कारण ? उस मूर्ति में भेरू का आरोप है। वैसा ही भगवती स.10 उ 5 देवता डाढा का आशातना टाले, ऐसा पाठ है और डाढा की भक्ति करते हैं। आशातना पाप है। भक्ति धर्म है और देखो दशवैकालिक अ० 9 उ० 2 गाथा।

संघट्टइत्ता काएणं, तहा उवहिणामवि ।
खमेह अवराहं मे, वइज्जा न पुणोत्तिए ।

भावार्थ — गुरु की उपधि आदि की पग आदि लगने से आशातना हो जावे तो गुरु को ही खमावे। उपधि अजीव होते हुये भी गुरू महाराज की उपधि होने से गुरु महाराज की जितनी आशातना होती है उतनी ही गुरु की उपधि पर पैर आदि लगाने से होती है। इसी तरह जिन प्रतिमा के प्रति भी समझ लेना।(ए. पी.) ने चमरइन्द्र महावीर स्वामी का शरणा लेके गया का पाठ लिखा है इस विषय में हम ऊपर लिख आये। आगे 4 शरणों में मूर्ति किस शरणा में है ? ऐसा विकल्प किया है। अतः बंधव ! अरिहंतों की मूर्ति अरिहन्तों के शरणों में है और सिद्धों की मूर्ति सिद्धों के शरणों में है। इसी का समाधान भी ऊपर कर आये हैं (प्रश्न) फिर तीन शरणों में जुदा जुदा क्यों कहा (उत्तर) किसी काल क्षेत्र से यदि तीर्थंकरों का योग न हो तो प्रतिमा या साधू के शरणे से जा सकता है परन्तु तुम (अरिहंतचेईयाणि) का अर्थ छद्मस्थ अरिहंत करते हैं ए 4 शरणों में से किस शरणों में है ? जो अरिहंतों के शरणों में कहोगे तो पहले पाठ में तो अरिहंत का शरणा आ गया है। कदाचित्

साधु के शरणों में कहोगे तो तीसरा अणगार का शरणा कह दिया है। कहो! अब मैंने पांचवा शरणा कहा है कि आपने पांचवां शरणा बनाया है ? अब भी कुछ शका हो तो और सुनो। छद्मस्थ अरिहंत पांच पदों में कौनसे पद में हैं ? जो अरिहंतों के पद में कहोगे तो अरिहंतों का पहिला शरणा है। जो साधु पद में कहोगे साधु का तो तीसरा शरणा कहा है। बतलाइए! अनन्ता तीर्थंकर के तो 4 शरण 5 पद कहे हैं तुम 5 शरणे और 6 पद कहाँ से लाये ? आप किसी अन्यायी के जाल में पड गये हो तो उन से पूछो कि मुझे झूठा कदाग्रह में क्यों फंसा दिया ? खैर अब भी जन्म सुधारणा चाहते हो तो श्री वीर प्रभु! की वाणी का शरणा लो। अस्तु ।। 6 ।।

शाश्वती अशाश्वती प्रतिमा वंदे, दुग चारण मुनिरायजी ।
शतक बीसमे उद्देशे नवमे, बहु वचन कहयो जिनरायजी ।
प्रतिमा० ।। 7 ।।

अर्थ— भगवती सूत्र शतक 2 उ० 9 का पाठ में चारण-मुनिओं ने जिन प्रतिमा वांदी है। सो मूल पाठ है -

यत्-जंघाचारणस्स णं भंते ! तिरियं केवतिए गतिविसए प. ? गोयमा ! से णं इओ एगेणं उप्पाएणं रुयगवरे दीवे समोसरणं करेति करइत्ता तहिं चेइयाइं वदइ तहिं चे 2 तओ पडिनियत्तमाणे बितएणं उप्पाएणं नंदीसर वर-दीवे समोसरणं करेत्ति नद्दी. 2 तहिं चेइयाइं वंदइ तहिं चेइयाइ वं. इहमागच्छइ 2 इह चेइयाइं वंदइ, जघा-चारणस्स णं गोयमा ! तिरियं एवतिए गइविसए प ।

जंघाचारणस्स णं भंते ! उड्ढं केवतिए गतिविसए पन्नत्तें ? गोयमा ! से णं इओ एगेणं उप्पाएणं पंडगवणे समोसरणं करेति समो. 2 तहिं चेइयाइं वंदति तहिं चे. 2 ततो पडिनियत्तमाण बितिएणं उप्पाएणं नंदणवने समोसरणं करेति नंदणवने 2 तहिं चेइयाइ वंदति तहिं 2 इह आगच्छइ 2 इह चेइयाइं वंदति, जघावारणस्स णं गोयमा ! उड्ढं एवतिए गतिविसए प. ।

अर्थ हे भगवन् ! जंघाचारण मुनि का तिरछी गति का विषय कितना है ? गोतम ! एक डिगले में रुचकवर जो तेरमा द्वीप है उसमें समोसरण करे, वहां के चैत्य अर्थात् शाश्वते जिन-मंदिर (सिद्धायतन) में शाश्वती जिन प्रतिमा को वांदे, वांद के वहां से पीछे निवर्तता हुआ दूसरे डिगले से नंदीश्वर द्वीप में समवसरण करें, करके वहां बो सभी चैत्यों को वांदे, वांद के यहां के अर्थात् भरत क्षेत्र में आवे आकर के चैत्य अर्थात् अशाश्वती जिन प्रतिमा को वांदे । जंघाचारण की तिरछी गति का विषय इतना है । ता हे भगवन् ! जंघाचारण मुनि का उर्द्ध गति का विषय कितना है ? गोतम ! एक डिगले में पांडुक वन में समवसरण करे, करके वहां चैत्यों को वाँदे वांद के वहाँ से पीछे फिरता हुआ दूसरे डिगले में नंदन वन में समवसरण करे, करके वहां के चैत्य वांदे, वांद के यहां आवे, आकर के चैत्य वादे गोतम ! जंघाचारण को उर्ध्व गति का विषय इतना है । इसी मुताबिक विद्याचारण है परन्तु उत्पात में फर्क है । प्रतिमा वांदने का अधिकार सदृश है ।

पाठको ! इस विषय में आगे बहुत चर्चा हो चुकी है। जिस से लूंका गच्छी अनेक महानुभावों ने प्रतिमा वंदणी स्वीकार कर लिया है। जैसे संवत् 1610 के लगभग अहमदाबाद में लूंका गच्छी पूज्य मेघ जी ऋषि ने आचार्य पद छोड के पचीस साधुओं के साथ में जैन दीक्षा ली है। ऐसा तो संख्या बंद आज तक चला ही आता है।

इस पर (ए. पी.) ने गालियां देने में ही अपना जन्म सफल माना है, आगे पहिले तो लिखा है कि चारणमुनि द्वीप देखने को गया है आके आलोयणा लेते हैं, आगे ज्ञान को वन्दे है, आगे वंदइ है पिण नमंसेइ नहीं है। इनके सिवाय दुर्वचनों से कागज काला किया है।

पाठको ! ध्यान देके सुनो, सामान्य साधु को भी किसी वस्तु को देखने के निमित्त जाने का भगवान् ने निशीथ सूत्र में मना किया है, देखने जावे तो प्रायश्चित कहा है। तो चारणमुनि द्वीप देखने को जावें और भगवान् उसका वर्णन करें, यह बात असंभव है।

दूसरा-आलोयण तो रस्ते आते जाते की है, जैसे मुनि गोचरी से आ के आलोवणा करते हैं परन्तु यह नहीं समझना कि गोचरी गया उसकी आलोवणा है। प्रिय ! आलोवणा तो रस्ते में जाते आते अविधि की हो सकती है। तीसरा-चैत्य शब्द का अर्थ ज्ञान करा ज्ञान को वन्दे। विचारो! पहिले तो लिखा है कि द्वीप देखने

को गये, अब कहते हैं कि ज्ञान वन्दने को गये। प्रिय! बालू की भीत कितनी देर की ? तुम्हारे 32 सूत्र में किसी जगह (चैत्य) को ज्ञान कहा है तो बतलाना था। लो! सुनो, नंदी, भगवती, पन्नवणा, अणुयोगद्वार आदि बहुत सूत्रों से पाठ-नाणं पंचविहः पण्णत्ता: तथा; अनेक साधु सामायिक आदि 11 अंग 14 पूर्व भणीया हैं। परन्तु 5-11-14 चैत्य नहीं किया और ज्ञान तो एक वचन है और चैइय बहु वचन है। प्रिय ! ज्ञान तो अरूपी है तो क्या उक्त द्वीप में ज्ञान का ढिगला पड़ा है? ज्ञा नको वंदते तो वहां द्वीप में जाने की क्या जरूरत थी ? आगे मुनि अपने स्थान नगर में आके असाश्वती प्रतिमा वंदी है। वो क्या अर्थ करोगे ? प्रिय ! भाव ज्ञान तो अरूपी है और स्थापना ज्ञान कहोगे तो प्रतिमा कहने में क्यों शरमाते हो। हमारे कई स्थानकवासी भाई पिण (चैत्य) का अर्थ मन्दिर प्रतिमा करते हैं।

(1) प्रश्न व्याकरण आश्रवद्वार 1 (चैत्य) अर्थ प्रतिमा उक्त सूत्र अ० 5 उक्त सूत्र अ० 10 ।

(2) उववाई पूर्णभद्र (चैत्य अर्थ) मन्दिर प्रतिमा।

(3) व्यवहार सूत्र चूलका (चैत्य) अर्थ प्रतिमा ।

(4) ज्ञाता, भगवती आदि में पदों के अधिकार (चैत्य) अर्थ प्रतिमा।

तो क्या जिन प्रतिमा के द्वेष वास्ते ही चैत्य का अर्थ ज्ञान

करते हो ? आगे सुनो ! चैत्य का अर्थ सूत्र में खुलासा प्रतिमा किया है ठा० 3 उ० 1

जीव शुभ दीर्घ आयु तीन कारण से बांधते हैं। पाठ-"देवीयं चेइय" उववाई में भगवान को बंदने के अधिकार में पाठः "देवयं चइयं" भगवती आदि में ऐसा पाठ बहुत है। इसका अर्थ देवता का चैत्य (प्रतिमा) नी परे आप की सेवा भक्ति करुं (टीका दैवतं दैवचैत्यं इष्टदेव प्रतिमा) आगे वंदे हैं नमंसेइ नहीं इत्यादि इसी से मालुम होता है कि ये लोग (नय) निक्षेपे के ज्ञान से शून्य हैं। जो कि (नय) का ज्ञान होता तो ऐसा कुयुक्तियां कदापि न करते। बांधव ! यह वचन संग्रह-नय का है। इस में सम्पूर्ण चैत्य वंदन आ जाते हैं उववाइ में एक वचन है ठाणांग सूत्र (एगे आया) देखो आचारांग-सूत्र में तीर्थ यात्रा कही है। गौतम स्वामी ने अष्टापद की यात्रा करी है। तो फिर शंका ही किस बात की ? जैसा शास्त्र में वैसा प्रतिमा छत्तीसी में है, इत्यादि सूत्रार्थ से सिद्ध हुवा चारण मुनि ने शाश्वती प्रतिमा वंदी है इति ॥

सती द्रोपदी प्रतिमा पूजी। ज्ञाता सूत्र मंझार जी।
आणंद श्रावक अङ्गसात में। सुण तेहनो अधिकारजी
प्र० ॥ 8 ॥

अर्थ — सूत्र ज्ञाताजी अध्ययन 16 पाठ-

पत्-तएणं सा दोवइ रायवर कन्ना जेणेव मज्जणघरे तेणे-
व उवागच्छइ । मज्जणघरमणुप्पविसइ ण्हाया
कयबलि कम्मा कयकोउय मङ्गलपायच्छित्ता सुद्ध-
पावेसाइं वत्थाइं परिहियाइं मज्जणघराओ पडि-
णिक्खमइ जेणेव जिनघरे तेणेव उवागच्छइ 2 जिन-
घरमणुपविसइ पविसइत्ता आलोए जिणपाडमाणं
पणामंकरेइ लोमहत्थयं परामुसइ । एवं जहा सुरिया-
भो जिणपडिमाओ अच्चेइ तहेव भाणियव्वं
जाव धुवं डहइ । धुवं डहइत्ता वाम जाणुं अंचेइ
अंचेइत्ता दाहिणजाणुं धरणीतलसि निहट्टु त्तिर-
क्खुत्तो मुद्धाणं धरणी तलसि निवेसेइ निवेसइत्ता
ईसिं पच्चुण्णमइ करयल जावति कट्टु एवं वयासी
नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं जाव सम्पत्ताणं
वन्दइ नमंसइ जिनघराओ पडिणिक्खमइ ।

अर्थ - तब सो द्रोपदी राजवर कन्या जहां स्नान मज्जन करने का घर (मकान) तहां आवे । मज्जन घर में प्रवेश करे । स्नान करके किया है बलिकर्म पूजाकार्य अर्थात् घर देहरे में पूजा करके कौतुक तिलकादि मंगल, दधि, दूर्वा, अक्षतादि से ही प्रायश्चित दुःस्वप्नादि के घातक किये हैं । जिसने शुद्ध उज्ज्वल

सुन्दर जिनमंदिर में जाने योग्य ऐसे वस्त्र पहर के मज्जन घर में से निकले । जहां जिनघर है वहां आवे । जिनघर में प्रवेश करके देखते ही जिन प्रतिमाको प्रणाम करे । पीछे मोरपीछी लकर जैसा सूर्याभ देवता जिन प्रतिमा को सतरा प्रकार से पूजे तैसे सर्वविधि जानना । सो सूर्याभका अधिकार यावत् धूप देने तक कहना पीछे धूप देके वामजानु (डाबागोडा) ऊंचा रखे जिमणा जानु (सज्जा गोडा) धरती पर स्थापन करके तीन बेर मस्तक पृथ्वी पर स्थापे, स्थापके थोडासा नीचे झुकके हाथ जोड़के दशों नखों को मिलाके मस्तक पर अंजली करके ऐसे कहै नमस्कार होवे अरिहंत भगवत प्रति यावत सिद्धिगति को प्राप्त हुए हैं । यहां यावत् शब्द से संपूर्ण शक्रस्तव कहना,पीछे वांदना नमस्कार करके जिन घर से निकले ।

प्रिय! बात जग जाहिर है कि द्रोपदी महासती ने जिनप्रतिमा पूजी और नमोत्थुणं किया है ।

तद्यपि (ए० पी०) ने कदाग्रह के वश होके भद्रक जीवों को बहकाने के लिये कुयुक्तियां करी हैं। परन्तु किसी सेठ को एक लोफर आदमी ने कहा मैंने तो आपको मर गया सुना था । सेठ ने कहा मैं तो जिन्दा बैठा हूं । लोफर ने कहा मुझे भला आदमी ने कहा था । अस्तु विचारो लापर का कहना सत्य है,या सेठ प्रत्यक्ष बैठा वो सत्य है ? मतलब, हम ऊपर लिख आये हैं। वीतराग गण-

धर का वचन सत्य है कि (ए० पी०) का स्वकपोल कल्पित गपोडा सत्य है ? पाठक स्वयं विचार लेवें।

आगे लिखा है कि विधिवाद में पता नहीं मिले तब चरितानुवाद की साक्षी देते हो इत्यादि।

प्रिय ! अव्वल तो आप किसी जैन मुनिकी भक्तिकर विधिवाद चरितानुवाद को समझो। विधिवाद चरितानुवाद किसे कहते हैं ?

देखो ! मेघकुमार, थावच्चापुत्र आदि की दीक्षा महोत्सव सूत्र में चली है। आप उसको क्या कहोगे? जो विधिवाद कहोगे तो आपके मत का जड मूल से निकंदन हो जायगा। यदि चरितानुवाद कहोगे तो द्रोपदीजी की पूजा की तरह उनका संयम भी चरितानुवाद में कहना पड़ेगा। अब किस बिल से धसोगे ?

देवानुप्रिय ! तात्पर्य यह है कि गणधर भगवान सम्बन्ध पर कथन फरमाते हैं जिसमें विधिवाद का कथन विधिवाद में समझना और चरितानुवाद का कथन चरितानुवाद में समझना। जैसे मेघकुमार का जन्म से दीक्षा तक विधिवाद में श्रावक प्रतिमा पूजी सो सुनो।

[1] भगवती श० 2 उ० 5 तुंगीया नगरी के श्रावक

पा० यत् = [णहाया कयबलिकम्मा]

टीकार्थ—स्नानानन्तरं कृतबलिकर्म्मैः स्वगृह देवतानां ते तथा। मतलब प्रतिमा पूजो।

टब्बार्थ —ण्हाया-स्नान कीधो। कयबलि कम्मा-आपणा। घरना देवताने कीधा बलिकर्म अर्थात् प्रतिमा पूजा करो।

[पूर्वपक्ष] उक्त श्रावकों ने कुल देवी की पूजा करी है ।

[उत्तर पक्ष] प्रिय ! वे भगवान के श्रावक आप सरीखे नहीं सो थे भैरव, भवानी, चण्डी माता आदि को पूजते फिरे। उक्त श्रावक ने तो व्रत लेते ही अन्य देवों को पूजने का त्याग किया है। पाठ-

नो खलु मे भंते ! कप्पइ अज्जप्पभिइं च णं अन्नउत्थिया ! वा अन्नउत्थयदेवयाणिवा इत्यादि

इस पर गणधर भगवान ने मोहर छाप लगा दी है। वो भी सुन लीजिये।

(असहिज्जदेवा सुरनाग सुवण्ण जक्ख रक्खस किन्नर (किंपुरिस)

अर्थ-श्रावक कोइ देवता का साज नहीं वंछय न वांदे, न पूजे। इतने पर भी कुल देवी पूजने का भ्रम दूर न हुवा हो तो और सुन लीजिये। श्रीज्ञाता सूत्र अ० 8 श्रीमल्लिनाथ जी ने भी जिन प्रतिमा पूजी का पाठ -

(ण्हाया कयबलिकम्मा) सिद्ध हुआ।

(2) भगवती श० 7 उ० 9 वर्णनागनतुवेजी ने प्रतिमा पूजी।

(3) भगवती श० 11 उ० 12 आलंभिया नगरीका इसीभद्र पुत्र आदि बहुत श्रावकों ने जिन प्रतिमा पूजी।

(4) भ० स० 12-1 मंख पोखली आदि ने जिन प्रतिमा पूजी

(5) भ० स० 12 2 जैवंती, मृगावती, उदाई राजा ने प्रतिमा पूजी और भी उदाइराजा मंडुक, श्रावक कार्तिक सेठ आदि का अधिकार है।

(6) ज्ञाता अ० 5 थावच्चा पुत्र आदि 2500 सो मुनि श्री शत्रुञ्जय तीर्थ पर पधारे हैं।

(7) ज्ञाता अ० 8 श्री मल्लिनाथ प्रभु ने प्रतिमा पूजी और आचारंगादि 5 सूत्र तो लिख आये हैं। 26 सूत्र अगाडी लिखूंगा सों देख लेना आगे (2) प्रश्न किये हैं [1] क्या तुम्हारे मूर्तिपूजकों की कन्याएं पांच पति कर सकती हैं ?

[2] प्रश्न-क्या तुम्हारे मूर्ति पूजने वालों के विवाहों में म-

मदिरा मांस पकाकर अपने सम्बन्धियों को खिलाया जाता है। जो कि द्रोपदी के विवाह में ये दोनों कार्य हुए हैं।

(उत्तर) मित्र ! द्रोपदीजी के लग्न समय कृष्ण वासुदेव आदि बड़ 2 राजा आये थे। उनकी साक्षी से महासती द्रोपदी जी ने पूर्व नीयाणे के प्रभाव से 5 पति वरे थे। जिसको श्री कृष्ण वासुदेव ने भी कहा है [सुवरियं] याने भला वरिया। अब भी आपको कुछ भ्रम हो तो सुनो ! वीर भगवान ने मुखारवींद से कहा है कि चेलना महासती है, इसको तो आप भी मानते हो, जब चेलना जी को दोहला के समय अभय कुमार ने किस का आहार कराया था ? वो निरयावलीका सूत्र में खुलासा है, वो कारण से किया हुआ कार्य अब भी आप कर सकते हैं ?

[पूर्वपक्ष अजी ! हम ऐसा कार्य किस वास्ते करें ? महासती के तो पूर्वभव का सम्बन्ध था।

[उत्तर] प्रिय मित्र ! यही आपके प्रश्न का उत्तर है। जैसे चेलणा महासती ने पूर्व सम्बन्ध से अनुचित आहार किया, वैसे ही द्रोपदी महासती ने पांच पति वरिया।

[प्रश्न 2] उत्तर - पाठकों ! ऐसे अनार्य वचन लिखते इन की कलम के सीचली होगा। खैर ! उत्तर सुनो, जैन सिद्धान्त में मदिरा मांस का आहार न तो द्रोपदी जी ने किया है न उन के सम्बन्धी कृष्ण वासुदेव, पांडव आदि ने किया है, न कोई जैनी करते हैं।

आगे 6 प्रकार के आहार का पाठ लिख के कहा है "उस वक्त द्रोपदी को समकित नहीं थी" इत्यादि।

[उत्तर] 6 प्रकार के आहार का कारण यह है कि उस वक्त कोई समकिती कोई मिथ्याती राजा आये थे। उन्हीं की

राजनीति[1] के अनुसार प्रबन्ध किया था। इस में द्रोपदी महासती को मिथ्यात का कलंक देना, प्रिय ! यह बात कितनी भूल की है।

(पूर्वपक्ष) द्रोपदी को समकित होती तो उनके घर में 6 प्रकार के आहार किस वास्ते होते ?

(उत्तरपक्ष) यदि घर में आहार होने से ही मिथ्याती कहते हैं तो सुन लीजिये-

(1) सूत्र उपासकदशा अ० 8 महाशतक श्रावक के घर में 6 प्रकार का आहार होता था और महाशतक की स्त्री (रेवती) 6 प्रकार का आहार करती थी। इसमें महाशतक श्रावक का श्रावकपना मानते हो या नहीं ?

(2) सूत्र उत्तराध्ययन अ० 22 उग्रसेन[2] राजा की पुत्री राजमती के विवाह के अन्दर हजारों जानवर इकट्ठे किये थे। श्रीनेमनाथ प्रभु आदि जान (बरात) लेके पधारे थे अब फरमाएँ राजमतीजी के समकित में कुछ शंका है. देवी राजमतीजी के वास्ते गणधर भगवान ने फरमाया है (संजताए सुभासिय) राजमती जी को संजती कहा है।

लो राजमती को तो आप भी मानते हैं न ! क्या उनकी तरह आप भी विवाह में जानवर इकट्ठे करते हैं ? तब आप को कहना ही पड़ेगा कि उग्रसेन राजा तो समकिती था। परन्तु विवाह में आये हुए कितने ही राजा उनके साथ में मिथ्याती थे, इस वास्ते जानवर इकट्ठे किये थे।

बन्धु ! राजमती जी और द्रोपदी जी दोनों समकित में अव्वल मानी गई हैं।

---

1 जैसा यजमान वैसी सरभरा.

2 उग्रसेन राजाकुं जेठमल ढुंढकने भी सम्यक्ती लिखा है।

प्रिय ! जरा तो परभव का डर रखना था ! द्रोपदीजी के घर में जिन मन्दिर और भगवान की पूजा करने वाली को मिथ्यात्वी कहना कितना अहित का कारण है, आगे लिखा है कि द्रोपदीजी ने मूर्ति पूजी वो अरिहंत की नहीं थी, कामदेव की थी इत्यादि ।

अहो कर्म गति ! मुझे आश्चर्य उत्पन्न होता है कि इस हठाग्रही जीव को केवली महाराज भी शायद ही समझा सकें । भोले भाई ! सूत्र में (जिनपडिमा) कही है । जिस को आप कामदेव (इलाजी) कहते हैं तो (कामदेव पडिमा) ऐसा कोई सूत्र का पाठ तो लिखना था । दूसरा नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं इत्यादि नमोत्थुणं का गुण कामदेव में है कि अरिहंतों में है ? मुझे आप की अनुकंपा आती है । आप किस हठाग्रही के फंदे में फँस गये । क्या आप तिण्णाणं तारयाणं कामदेव को ही समझते हैं ! अस्तु—

सत्यार्थ चन्द्रोदय का उत्तर ढूंढक हृदय नेत्राञ्जन में देख लेना । कितने लोग कहते हैं कि द्रोपदी ने पूर्व भव में नियाणा किया था इत्यादि उनका समाधान हमारी बनाई सिद्ध प्रतिमा मुक्तावलि में हमने अच्छी तरह से खुलासा कर दिया है । जिस में यह नहीं लिखा है अस्तु आनन्द श्रावक का अधिकार सातवां अंग उपासक दशा सूत्र में है । सो आगे सुनो ।।8।।

अन्यतीर्थों ने उणरी प्रतिमा, 'नहि वंदु जावजज्जीवजी'
स्वतीर्थोंरी प्रतिमा वंदु, ज्यां ने वंछे समकितजीवजी० प्रतिमा ९।

अर्थ–सुगम सुगमाक्षर । सूत्र उपासक दशा अ० 1 मूल पाठ–

नो खलु मे भंते कप्पइ अज्जप्पभिइं च णं अन्नउत्थिया वा अन्नउत्थियदेवयाणिवा अन्नउत्थिय परिग्गहियाइं अरिहंतचेइया· इंवा वंदित्ता वा नमंसित्ताए वा ।

१ (टीका) नो खलु इत्यादि। नो खलु मम भदंत भगवन्! कल्पते युज्यते अद्यप्रभृति इतः सम्यक्त्व प्रतिपत्ति दिनादस्य निरतिचार: सम्यक्त्वपरिपालनार्थं तदयतनामाश्रित्य अन्न उत्थिएति जैनयूथाद्यदन्यद्यूथं संघान्तरमित्यर्थस्तदस्ति येषां ते अन्ययूथिकाश्चरकादिकुतीर्थिकास्तान् अन्ययूथिकदेवतानि बाहरि हरादीनि २अन्ययूथिक परिगृहितानि वा अर्हच्चैत्यानि अर्हत्प्रतिमालक्षणानि, यथाभौतपरिगृहीतानि रुद्रमहाकालादीनिवदितु अभिवादनत कतु नमस्यतु वाप्रणामपूर्वक प्रशस्तध्वनिभिर्गुणोत्कीर्तनंकर्तुम तेषा मिथ्यात्वस्थिरीकरणादिदोषप्रसङ्गादित्यभिप्रायः ।।

2 अर्थ—हे भगवन् ! मुझ को न कल्पे । क्या न कल्पे सो कहते हैं। आज से लेके अन्यतीर्थी-चरकादि अन्यतीर्थी के देव हरि-हरादिक और अन्य तीर्थी के ग्रहण किये अरिहंत के चैत्य- जिन-प्रतिमा इनको वंदना करना नमस्कार करना ।

इस विषय में (ए. पी.) ने खूब धूर्तता से चालाकी करी है । प्रिय ! आपकी धूर्तता बहुत समय तक चली, परन्तु अब चलने की नहीं है । सुन लीजिये ! सूत्र पाठ हम ऊपर लिख आये हैं । उसमें (अन्न उत्थिय परिग्गहियाइं अरिहंतचेइयाइं वा पाठ है)

[ए. पी.] ने **[अण्णउत्थिय परिग्गहियाणि वा चेति-ता वा]** इन दोनों पाठों का मतलब एक ही है। परन्तु जैन सिद्धान्तों के रहस्य का अनजाण [ए. पी.] ने श्रीमान् आत्मारामजी पर भी वृथा आक्षेप किया है, प्रथम तो दोनों पाठों में [अरिहन्त] शब्द का फर्क सुन लीजे [ए. पी.] का किया हुआ अर्थ- "मतका ग्रहण कर लिया है ज्ञान ऐसे भ्रष्टाचारी साधू को वंदना नमस्कार करना नहीं। अब कह ! तेरी प्रतिमा कौन से बिल में चूहा खींच ले गये ?"]।

ऐसा अर्थ किसी स्थानक वासियों के माने हुवे किसी सूत्र में तथा खण्डन मण्डन की पुस्तकों में नहीं है। न जाने (ए. पी.) कौनसे चूहों के बिल से निकले ? अब हम पूछते हैं कि तुम्हारा लिखा हुआ पाठ **अण्णउत्थियपरिग्गहियाणि वा)** का क्या अर्थ है ? तब उनको कहना ही पड़ेगा कि **(अन्य तीर्थ ग्रहण किया)** आगे **(चेतिता वा)** का क्या अर्थ है ? खोटा अर्थ करेगा तो पिण ज्ञान तथा साधु दोनों में से एक कहेगा। चाहे ज्ञान, चाहे साधु, परन्तु आपने तो मन की मौज से चैत्य का अर्थ ज्ञान और साधू दोनों कर दिये हैं। खैर ! दोनों शब्द मिलके अन्य तीर्थी ग्रहण किया ज्ञान या साधु हुआ, तो फेर **अन्नउत्थियपरिग्गहियाइ अरिहंतचेइयाइं वा)** कहने का क्या मतलब था ? वो तो पहला पाठ (अन्न उत्थियाय) में ही आ गया। जो कहेगा कि (अरिहंता) का ज्ञान तथा सरधा से भ्रष्ट हुआ साधु को नहीं वंदे। तो हम पूछेंगे कि अरिहंत शब्द तो तुम मानते नहीं फिर अरिहंत शब्द कहां से निकाला ? कदाचित कहोगे कि सम्बन्ध पर प्रक्षेप करना पड़ता है।

भोले भाईयो ! प्रक्षेप से कहना अच्छा समझना और सूत्र में है उसको बुरा समझना। कितनी अज्ञानता है ! सिद्ध हुवा कि तीसरे पाठ में अरिहंत शब्द है। खैर ! आगे सुनिये।

अरिहंत का साधु भ्रष्ट हो के अन्य मत में चला गया उन को अरिहंतां का साधु कहना तो आप सरीखा निरक्षरों को ही घटते हैं। जैन सिद्धांतों में तो उनको अन्य तीर्थी ही कहा है सो पहिले पाठ में आ गया है।

देखिये ! ज्ञाता सूत्र में सुकदेव संन्यासी, भगवती में खंदक संन्यासी, शिवराजकूषेश्वर, पोगल संन्यासी तथा कालोदेई आदि अन्य मत को श्रद्धा छोड के भगवान् के पास दीक्षा लेने से भगवान् का ही साधु कहलाया था। आपके कहने से तो (**अरिहंत-परिग्गहिया अण्णउत्थीय चेइयाणि व**) होना चाहिये। परन्तु ऐसा पाठ गणधर महाराज ने नहीं फरमाया। सिद्ध हुआ तीसरे पाठ में चैत्यशब्द का अर्थ प्रतिमा है।

(पूर्व पक्ष) सूत्र में ऐसा पाठ तो नहीं कि आनन्द ने प्रतिमा वंदनी राखी। आप ऐसे किस आधार से कहते हैं ?

(उत्तरपक्ष) प्रिय ! सूत्र तो खुलासा पुकार रहा है, परन्तु आपकी अज्ञान दशा से आपको मालूम नहीं पड़े तो अज्ञान-चश्मे को उतार के देखो। आनन्द श्रावक ने भगवान के साधु को वन्दना करना, किस पाठ में रखा है सो बतला दो।

(पूर्व पक्ष) अजी ! पहले पाठ में अन्य तीर्थी को नहीं वंदे स्व तीर्थी को वन्दना आपसे ही सिद्ध हो गया। जैसे झूठ बोलने का त्याग करने से सत्य बोलना आपसे ही रह गया ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं।

(उत्तर०) प्रिय ! बोलना तो न्याय, चलना अन्याय। यह

किसने सिखाया ! जब पहले पाठ से साधु वंदना सिद्ध किया तो दूसरे पाठ में अन्यतीर्थी का देव हरिहलधर की मूर्ति नहीं वंदे तब अरिहंतों की मूर्ति वंदनी आपके कहने से सिद्ध हो गई। फिर सिरपच्ची किस बात की ?

(पूर्वपक्ष) हम पूजा पाठ में मूर्ति का अर्थ नहीं करेंगे खास हरिहलधर का अर्थ करेंगे।

(उत्तर पक्ष) प्रिय ! आप का किया अर्थ कोई विद्वान् प्रमाणिक नहीं गिनेगा। प्रमाणिक अर्थ वेही हैं कि जो पूर्व आचार्य कर गये हैं। हम आप से इतना ही पूछते हैं कि आनन्द श्रावक ने अन्य तीर्थियों का भाव निक्षेपा वन्दना छोडा है कि 4 निक्षेपा वन्दना छोडा है (त्याग किया है) ?

(पूर्व०) आनन्द श्रावक ने तो अन्य तीर्थियों का 4 निक्षेपा वंदना त्याग किया है।

(उ०) तो से तीर्थियों का 4 निक्षेपा वंदना आप से ही सिद्ध हो गया।

(पूर्व०) अरिहंतों की प्रतिमा दूजा पाठ में वंदनीक है, तो फिर तीसरा पाठ किस वास्ते है ?

(उत्तर०) प्रिय ! जैसे बद्रीनाथजी में श्री पार्श्वनाथजी की प्रतिमा, जगन्नाथजी में श्री शांतिनाथजी की प्रतिमा, अन्य तीर्थी-लोक अपना देव करके पूजते हैं, जैसे ही जिन प्रतिमा अन्य तीर्थी ग्रहण करते हुये उस प्रतिमा को भगवान के श्रावक नहीं वंदे। प्रिय ! जैसा सूत्र का अर्थ था वैसा मैंने आप को कह दिया है। अब सत्यासत्य का निर्णय करना आप का फर्ज है।

(पूर्वपक्ष) भला साहब ! आज जिस की श्रद्धा मूर्ति पूजने की है। वो सामान्य श्रावक भी मन्दिर बना सकते हैं। आनन्द श्रावक तो धनाढ्य था। उनके मन्दिर बनाने का अधिकार किसी सूत्र में है नहीं। तो फिर कैसे मान लिया जावे आनन्द श्रावक ने प्रतिमा पूजी।

(उत्तर पक्ष) प्रिय ! आनन्द श्रावक का अधिकार उपाशकंदशासूत्र में है। उस सूत्र के पद 1152000। जिनकी श्लोक सख्या तो बहुत होती है, उक्त शास्त्र में क्या-क्या बातें थीं। उसकी नुद श्री समवायंग सूत्र में है। सो सुनो पाठ—

से किं तं उवासगदसाओ ? उवासगदसासु णं उवासयाणं णगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं वणसंडा रायाणो अम्मापियरो समोसरणाइं धम्मायरिया धम्मकहाओ।

अर्थ-सुगम ! इसमें (चेइयाइं) शब्द का अर्थ टीका का टबा का (चैत्य) याने जिन मन्दिर का ही है। शायद चैत्य का अर्थ बाग, ज्ञान, साधु करो तो बाग ज्ञान साधु का पाठ अलग है। इसी से (चैत्य) का अर्थ श्रावकों का जिन मन्दिर ही है। शायद कोई तर्क करे कि उपासक दशा में मन्दिर नहीं किया (समाधान) उपासक दसा 1152000 पद वाली लावो। हम बता सकते हैं। क्या उपासक दशा का कमग्रन्थ रहेने से समवायांग सूत्र झूठा बनाते हैं, प्रिय ! आनन्द श्रावक के जमाने को करीब 2500 वर्ष हुए हैं। परन्तु जिन मन्दिर तो हजारों वर्षों के मौजूद दृष्टिगोचर होते हैं। इतना ही नहीं बल्कि अंग्रेज विद्वानों ने भी कहा है कि जैनों में मूर्ति पूजा सनातन से ही चली आती है। आप को देखना हो तो भावनगर की छपी हुई मूर्ति मण्डन प्रश्नोत्तर देख

लेना। सिद्ध हुआ कि सूत्र में तो प्रमाण आनन्दादि श्रावकों का जिन मन्दिर है और श्रावक जिन प्रतिमा वंदे पूजे। देखो हमारी प्रतिमा शिखर बन्द मंदिर में बिराजे है, इसी में शंका करना ही समकित का भंग है। आत्मार्थी सज्जनों को सूत्र का वांचना परिपूर्ण आस्था रखना चाहिये। जब ही समकित की नींव और कार्य आनन्द श्रावक की तरे सिद्ध होगा। अस्तु ।।

अंतगडने अणुत्तरोववाई। प्रथम उपांग रो साखजो।
अरिहंतचैत्येनगरियांशोभे। श्रीजिनमुख से भाषजो,प्रति'।१०।

अर्थ—उक्त दोनों सूत्र में चंपा नगरी के अधिकार में उववाई सूत्र की भोलावण है। जिस में मूल पाठका वणन चला है। जिस का खण्डन करने में (ए० पी०) को कोई कुयुक्ति न मिली तब कह दिया कि "उववाई में पूर्णभद्र यक्ष का मन्दिर है तथा श्री आत्मारामजी ने लिखा वो पाठ प्रक्षेप हैं। सात प्रतियाँ मेरे पास प्राचीन में यह पाठ नहीं है" इत्यादि बाकी गालियां। पाठको ! लुंका मत को ही करीब 440 वर्ष हुए तो इन से प्राचीन की तो आशा हो क्या। मैंने स्थानक वासियों की 20-25 उववाई सूत्र की प्रतियां देखी हैं। जिस प्रति में उक्त पाठ है और जैन भण्डारों से तो ताड पत्र पे लिखी हुई प्रति भी देखी जिसमें उक्त पाठ है, तो 'ए. पी.' क्या भोले जीवों को भूल में डालने के लिए धोखाबाजी कर रहा है? जो उक्त पाठ 'पाठांतर' देख के ही चमक गया हो तो उसका मतलब सुन लो ! जैन सिद्धान्त पूर्वधारी आचार्य ने पुस्तकारूढ मथुरा और बलभीपुर इन दो स्थलों में किया था। ये बात जैन जैनांतर में प्रसिद्ध है ।जिसमें दोनोंआचार्यों के लिखे हुए पाठ का भावार्थ प्रिय ! यही है। सो पाठ देखो—

मूल	मूल
[यत् आयारवंतचेइया]	[बहुलाअरिहंतचेइया] जणवयसंणिविट्ठ बहुला इतिपाठान्तर ।
टीका-श्री अभयदेवसूरिकृत चैत्यानि देवतायतनानि इत्यादि— नोट-स्यात् यक्षादिका मन्दिर कहु देव तो यक्षका मन्दिर का पाठ अगाडी अलग है ।	टीका श्रीअभयदेवसूरि कृत- **बहुलानि यस्यां सा तथा १ अरिहंतचेइयजणवयविमणी विद्दबहुलेतिपाठान्तरं तत्रार्हच्चैत्यानां जनानां दूतिनाञ्च विविधानि यानि पाठकास्तैर्बहुलेति विग्रहः सूर्यांगचित्तचेइय जूपसणिविट्ठबहुला इति च पाठान्तर २ ।**
टब्बा लूंका गच्छ श्री अमृतचन्द्र सूरि कृत-छइ जिणनगरीइआकारवंत सुन्दराकार चैत्यप्रासाद देहरा छइ ।	टबार्थ-लूंकागच्छ श्रीअमृतचन्द्रसूरि कृत बहुला कहितां घणा जिणी नगरीयें अरिहंतना चैत्यप्रासाद देहरा घणा छे जिहां एहवो पाठान्तर छै ।

देखिये ! पूर्वधारी आचार्य ने तो दोनों पाठ प्रमाण किये हैं। उस पर आप के बड़ों ने टब्बा किया है। क्या उन्हीं का वचन उत्थापने को ही आपने अवतार धारण किया है ? प्रिय ! उक्त पाठ को प्रक्षेप कह देवोगे तो पिण दूसरे पाठ से भी मन्दिर तो सिद्ध हो गया। फिर कुयुक्ति कर संसार वृद्धि करना क्या बुद्धिमानों का काम है ! शायद तुम्हारे सरीखे मति के अंधे कह देवें कि यह मन्दिर जक्ष का हागा, प्रिय गणधर भगवान ने जक्ष का मन्दिर अलग फरमाया है।

तोसे णं चंपाए णयरिए बहिया उत्तारपुरच्छिमे दिसीभाए पुणभद्दे णाम चेइए होत्था चिराइए।

अब आंख मींच के सोचो, आप की कलइ उडने में कुछ कसर रही है ? प्रिय ! इस समय में सूत्र देख के निर्णय करने वाले विद्वानों की संख्या दिन पर दिन बढती जा रही है. इतना ही नहीं बल्कि अंग्रेज लोग भी जान गये हैं। जैसे डाक्टर हरमन जैकोबी को जैनाचार्य श्री विजयधर्मसूरि से समागम जोधपुर में होने से उन्होंने भी निश्चय कर लिया कि जैनियों में मूर्ति पूजा सनातन है। आगे वैष्णव धर्म को मूर्ख बना के समाजी तथा कबीर पंथी, दादू पन्थी का नाम लिखा है।

पाठको ! (ए. पी.) मूर्ति विषय में आप के साधर्मी भाइयों का नाम लिखा। जैसे तो हमारे जैन धर्म में भी कितने ही आगम उत्थापी मूर्ति नहीं मानते हैं। जैसे बाइसपंथी, तेरापंथी, अजीवपंथी, गुलाबपंथी, आठकोटी पंथी और भी आज कल इन लोगों को बहुत विशेषण दिया हुआ है। परन्तु मैं अपनी कलम से लिखना नहीं चाहता हूं। मूर्ति पूजा विषय पीछे लिख आये हैं। और भी सुन लीजिये !

उक्त दोनों सूत्रों में अनेक मुनि शत्रुंजय आदि पर्वत (तीर्थ) पर पधार के सथारा किया है। यह निमित्त कारण आप को भी अवश्य मानना ही पड़ेगा।

(1) अन्तगड सूत्र वर्ग 3 अ० 8 सुलसा गाथा पतणी हिरणगमेषी देवको प्रतिमा पूजने से देव की ही आराधना हुई है। वैसे ही जिन प्रतिमा पूजने से जिनेन्द्र देवों की आराधना होती है।

(पूर्व पक्ष) अजी ! उन्होंने तो लौकिक खाते पूजी है।

(उत्तर पक्ष) प्रिय ! लौकिक देव की मूर्ति लौकिक खाते पूज के अपना कार्य कर लिया, तो लोकोत्तर कार्य सिद्ध क्यों नहीं होवे ? अपितु अवश्य होवे।

(2) वर्ग 6 अ० 3 सुदर्शन सेठ श्रावक ने प्रतिमा पूजी है। **(ण्हाया कय बलिकम्मा)** यह गणधरों का वचन है, अस्तु ।।10।।

प्रश्न व्याकरण पहिले संवर, पूजा अहिंसा नामजी। प्रतिमा-वैयावच्च त्रीजे संवर, करे मुनि गुणधामजी। प्रतिमा. ।११।

अर्थ – सूत्र प्रश्न व्याकरण अ० 6 मूल सूत्र (पूया 57) टीका- **(भावतो देव पूजा आयतनं गुणानामाश्रयः)** टब्बार्थ-भावथकी देवने पूजवो ते दया ।। 57 ।। भावार्थ–अहिंसा याने दया के 60 नाम हैं। जिनमें 57 वां नाम देव पूजा है। उक्त सूत्र अ० 8 में साधु प्रतिमा की वैयावच्च करे है। मूल पाठ—

केरिसए पुणाइ आराहए वयमिणं जे से उवहि भत्तपाण-संगहणदाणकुसले अच्चंतबाल दुब्बल गिलाण बुड्ढ खमगे पव-

त्ति आयरिय उवज्झाए सेहे साहम्मिए तवस्सी कुलगणसंघचेइ यट्ठे य निज्जरट्ठी वेयावच्चं अणिस्सियं दसविहं बहुविहं करेइ

अर्थ—शिष्य पूछता है "हे भगवन् ! कैसा साधु तीसरा व्रत आराधे ? गुरु कहते हैं - जा साधु वस्त्र तथा भातपाणी यथोक्तविधि से लेना और यथोक्तविधि से आचार्यादि को देना तिन में कुशल होवे सो साधु तीसरा व्रत आराधे। अत्यंत बाल (1) शक्तिहीन (2) रोगी (3) वृद्ध (4) मास क्षमणादि करने वाला (5) प्रवर्त्तक (6) आचार्य (7) उपाध्याय (8) नयादीक्षित शिष्य (9) सार्धमिक (10) तपस्वी (11) कुल-चान्द्रादिक (12) गण-कुल का समुदाय - कोटीकादिक (13) संघ-कुलगण का समुदाय चतुर्विध संघ (14) और चैत्य-जिन प्रतिमा इनको जो अर्थ तिन में निर्जरा का अर्थी साधु कर्मक्षय वांछता हुवा यश मानादिक की अपेक्षा बिना दस प्रकार से तथा बहुविधि से वैयावच्च करै, सो साधु तीसरा व्रत आराधे। इसी में (**चेइयट्ठे निज्जरट्ठी**) इसका अर्थ टीकाकार श्रीअभयसूरि (**चैत्यानि जिनप्रतिमा एतासां योर्थः प्रयोजन स तथा तत्र स निर्जरार्थी कर्मक्षयकामः वैयावृत्यं,**)

इस पर (ए. पी.) ने प्रश्न व्याकरण के पांचवें अध्ययन का पाठ (**चेइयाणि वणसडो**) उक्त सूत्र अध्ययन 10 का पाठ (**भवण तोरण चेइय देवकुल सभा पवाइति**) यह दोनों पाठ से (चैत्य) का अर्थ प्रतिमा किया है और तीजा संवरद्वार में [चैत्य] अर्थ ज्ञान किया है। वाचक वर्ग ! स्वय विचार लेवें कि इन लोगों की कितनी न्याय बुद्धि है ? क्या जिनेन्द्र देवों की प्रतिमा

की निन्दा करने को ही [चैत्य] शब्द का अर्थ प्रतिमा करते हो और प्रतिमा का अधिकार ज्ञान साधु करते हैं तो जैसे चोर कोतवाल को दण्ड दे। वाह कलयुग तेरी लीला !

प्रिय ! लोक कहते हैं कि इन लोगों के पांच ज्ञानावरणीय तीन दर्शन मोहनीय यह आठ पाटा द्रव्यतो मुंह बन्धा है और भाव आंख (चक्षु) पर बन्धा है। परन्तु (ए. पी.) को इतने से सन्तोष नहीं हुवा तब प्रश्न० अ० 10 का पाठ अनुसार एक पाठ [चक्षु] पर बन्धाने की उद्घोषणा करी है उक्त पाठ में तो घर हाट तोरण दरवाजा आदि बहुत वस्तु देखने की मना है। यदि जब [स्थानकवासी] खुली आंखों फिरेंगे तो उक्त वस्तु दीख पड़ेगी, इसी से एक पट्टी आंख पर बांधने की अवश्य जरूरत है।

(प्रश्न) क्यों जी ! आप उक्त दो पाठ में (चेईय) शब्द का क्या अर्थ करते हो ?

(उत्तर) प्रिय ! हमारे तो जो पूर्व आचार्य कर गये हैं वही अर्थ है। इन लोगों की तरह नया नया अर्थ नहीं करते हैं। लो सुनो ! उक्त सूत्र में 3 ठिकाने [चेईय] शब्द है उसका पूर्वाचार्य ने [प्रतिमा] ही अर्थ किया है [1] चैत्य वृक्ष।

[1] प्रश्न० अ० 1 आश्रवद्वार में (चेईय) प्रतिमा है। परन्तु वह प्रतिमा किसकी है ? कराने वाला कौन है ? जिसका अधिकार सुन ! प्रथम आश्रवद्वार है हिंसा। जिसके भेद 5 हिंसा (1) हिंसा का नाम (2) हिंसा करने का कारण (3) हिंसा करने वाला (4) हिंसा का फल (5) प्रथम हिंसा।

1 पावो चंडो रुद्दो खुद्दो साहसिओ अणारिओ निग्घि-णो निस्संसो इत्यादि ।।

अर्थ-पापप्रकृतिना बन्धन नोकारण चंड रौद्र क्षुद्र: अणविमास्यौ प्रवृत्यौमलेच्छादि ना प्रवत्या व्याथी अनार्य पापनी निंदारहित सुग्या रहित इत्यादि । क्या स्थानकवासी सब इसमें आ गये ?

2 हिंसा के तीस नाम पाणवह इत्यादि ।

[2] पाणवहस्स कलुसस्स कडुयफलदेसगाइं तं च पुण-करेंति केइ पावा असंजया अविरया अणिहुय परिणामदुप्प-ओगी पाणवहं भयकरं बहुविहं बहुप्पगारं इत्यादि ।

प्राण वध आदि तीस नाम हैं ।

(3) बह वेलसा पाणा इत्यादि अनार्य का कार्य घर-हाट खेती आदि करसाणकर्म सभा तोरण देवकुल पगलीया प्रतिमा स्थूभ आदि बहुत विस्तार है । नोट-क्या श्री रुषभदेव प्रभु के निर्वाण के बाद 3 स्थूभ इंद्र महाराज ने कराई वो भी इसी में मानोगे ?

तीसरे अधिकार में जलचर, थलचर, खेचर, उरपुर, भुजपुर, चोरेंद्री जाव एकेंद्री तक जीवों की हिंसा **जीवकामत्थ धम्म-हेउं** काम विषय अर्थ धन्य धर्म । **टीका-वेदार्थाश्च वेदार्थमनु-ष्ठाना** टबार्थ-वेदार्थी अनुष्ठानयवादिहोमे जीवीतव्यनेऽर्थे तथा आचार, इत्यादि हिंसा करने वालों को मंदबुद्धि कहा है । क्या आपका स्थानक इस में आ गया ?

4 हिंसा करने वाला **कूरकम्मकारी इमे य बहवे मिलक्खु जाइ । के ते सक जवण सबर बब्बर गायमुरुंडी दभडग ति-**

शिय पक्वणिया कुलक्खा गौंड सिंहल पारस कोचअन्ध-दविल बिल्लल पुलिन्द अरोस इत्यादि ।

अर्थ—क्रूरकर्म का करने वाला घणा म्लेच्छ देश का पन्नवणा सूत्र में अनार्य देशों का नाम कहा है। कहां ते सक्क देशनां यवन देशनां सबर बच्छर कायमरुडां उट्टुभडग मित्तिक पक्वणिककुलाक्ष गोडीसिंहल पारसक्रौंच अंधडविड बिल्वकल पुलिन्द्र आरोप इत्यादि ।

5 तस्स य पावस्स फलविवागं अयाणमाणा वड्ढंत्ति महब्भयंअविस्समावेयणं दीहकाल बहुदुक्खसंकडं नरय तिरिक्ख जोणि इओ आउक्खए चुया असुभ कम्म बहुला उववज्जंति नरएसु हुलितं महालएसु इत्यादि ।

भावार्थ—पाप करने वाले को फल नर्क तिर्यंच का घोर दुःख बताया है। इत्यादि ।

प्रिय पाठको ! उक्त पांच अधिकार संक्षेप से कहे हैं। विशेष देखना हो तो सूत्र मेरे पास मौजूद है । देख लेवें, प्रिय ! अधिक खेद का विषय तो यह है कि उक्त पांच अधिकार अनार्य मिथ्याती के वास्ते हैं । परन्तुः हमारे स्थानकवासी भाई मूर्ति उत्थापने के लिये खुद ही उक्त पाठ से शामिल हो गये हैं। मगर उन लोगों को यह खयाल नहीं है कि श्री आचारांग सूत्र में भगवान ने फरमाया है **सम्मत्त दंसी न करंति पावं** यह वचन हमेशा स्मरण रक्खो । सम्यक्‌दृष्टी ऐसा पाप कदापि न करें, जो करे तो समकित रहे नहीं ।

पूर्वपक्ष-क्या समकिती को पाप नहीं लगे ? देखो !अधर्म द्वार में क्या हुवा? घर, हाट मन्दिर, थानक आदि तो सम्यक्दृष्टी पिण करते हैं।

उत्तर पक्ष - प्रिय ! जैसा अधर्म द्वार में अनार्य मिथ्याती अशुभ परिणाम माठी लेश्या पाप को सुग्य रहित लोहीवरिया हाथ चोकणा पाप करे है ।वैसा पाप सम्यक् दृष्टी नहीं करे ।देखो भ० स० पु० 9 वर्णनाग नतुवो चेडा राजा आदि संग्राम में पञ्चेन्द्री मनुष्य का वध उन्हीं के हाथ से हुवा था । परन्तु उनको श्रावक कह्या। न तु मंदबुद्धि या नरकगामी तथा भगवती में मिथ्याती किराणों बचे तो 5 क्रिया, वोहि ज किराणो सम्यक्दृष्टि बेचे तो 4 क्रिया लगे । प्रिय ! समझने को इतना ही है कि जो रुद्रपरिणामवाली अनंतानुबंधिचोकडी मिथ्याती के है, जिससे वो पाप कर मन में राजी हुये और उक्त चौकडी सम्यक्दृष्टि के नहीं है. जिससे लुखा परिणाम से पाप करे तो पण पश्चाताप करे । जिससे सम्यक्दृष्टि को अधर्म द्वार नहीं समजना ए सम्बन्ध गृहवास का है और जो मिन्दर करणा है रीति केवल धर्म का ही कार्य है। इसी से (**सम्मत्त दंसी न करंति पावं**) कहा है। इतने पर भी कोई मत कदाग्रही कहेगा कि नहीं हम तो हिंसा करने वालों को अधर्म द्वार में ही समझेंगे । उनसे हम एक ही बोल पूछते हैं -

1 | श्री मल्लिनाथ प्रभु ने अपनी मूर्ति कराई, उस में पृथ्वी काया की हिंसा हुई और उसमें एक एक ग्रास हमेशा डालने से असंख्य जीवों की आहुति हुई । ये काम भी 6 राजाओं को धर्म में प्रतिबोधने के वास्ते ही किया था, अब आपके हिसाब से इन परमेश्वर को किस द्वार में गिनोगे ? आंख मींच के 10 मिनट विचार

करो । ऐसे ऐसे अनेक बोल हैं । इस विषय में हमारी बनाइ सि० प्र० मु० देखो ।

[प्रश्न] अजी महात्माजी ! ऐसा **अर्थ** न तो पेस्तर मैंने पढा है न मैंने किसी से सुना, मैंने तो यही सुना था कि मूर्ति मन्दिर अधर्म बली द्वार में है। परन्तु आज सूत्र सुनकर मेरा भ्रम दूर हो गया है । अब इस वक्त आचारांग में जो '**जाई मरण-मोयणाए**' इन शब्दों का अर्थ सुनना चाहता हूं । सो आप कृपा कर सुनावें ।

[उत्तर] अहो सत्यचन्द्र ! ऐसा **अर्थ** आगे नहीं सुनने का कारण यह कि अभी कितने ही लोक गाडर प्रवाह है एक गाडर करें बें तो सब गाडर बें बें करने लग जाते हैं । परन्तु उसके तात्पर्य समझने वाले तुम्हारे सरी खे बहुत कम हैं, लोग जहां काम पडे तब '**चेइय**' पाठ दिखाके कह देते हैं कि देखो भाई '**मन्दिर प्रतिमा**' अधर्म द्वार में है । भोले भद्रिक जीव देख के भ्रम में पड़ जाते हैं । परन्तु अब तो कितने ही लोग तुम्हारे जैसी खोज करने लग गये हैं ।

तुमने जो आचारांग सूत्र कहा सो ठीक । हमारी बनाई सि० प्र० मु० पुस्तक में विस्तार से लिखा हुआ है । सो देख लेना, और कितने ही लोग मूर्ति के द्वेष से कहते हैं कि जन्म मरण के मिटाने को हिंसा करे तो बोध बीज का नाश होवे । इसमें आचारांग का पाठ '**जाई मरण मोयणाए**' दिखाते हैं । इसमें तुम को जो शंका हो तो इसी का अर्थ पूर्वाचार्यों ने किया वो मैं आपको सुना देता हूं ।

मूल सूत्र **'जाई मरण मोयणाए'** इस पर श्री भद्रबाहु स्वामी कृत नियुक्ति, शीलांकाचार्य कृत टीका है। श्रीजिनहंस सूरि कृत **दीपिका-यत् जातिमरणमोचनार्थं कर्मादिदते तत्र जात्यर्थं कार्तिकेयवंदनादिकाः क्रिया विधते यः कार्तिकेयं वंदते सः उत्तमजातिं लभते तथा यान 2 कामान् ब्राह्मणभ्यो ददाति तांस्तान् अन्यजन्मनि लभते इत्यादि कुमार्गोपदेशात् हिंसादौ प्रवृतिं विदधाति तथा मरणार्थं पितृपिंडदानादिषु अथवा ममानेन संबंधो व्यापादितस्तस्य वैरनिर्यातनार्थं वधबन्धादौ प्रवर्तते, यदि वा मरणनिवृत्यर्थं मात्मानो दुर्गाद्युपयाचितमजादिनाबलिं विधत्ते तथा मुक्त्यर्थं अज्ञानावृतचेतसः पंचाग्नितपोनुष्ठानादिषु प्राण्युपमर्दकारिषु प्रवर्तमानाः कर्मादिदते, यादवा जातिमरणयोर्मोचनाय हिंसादिकाः क्रियाः कुर्वते ।**

देखा ! मिथ्याति जिनआज्ञा विपरीत मृतपिंड, यज्ञ, होम, पंचअग्नि आदि क्रिया करे। उसे धर्म कहे। उनको बोधबीज नहीं मिले। परन्तु ऐसा नहीं कहा कि मन्दिर स्थानक कराने वाला। बंधव ! इतना तो विचार करना चाहिए, जो जैनी भगवान की भक्ति करता हो उसका बोधबीज का नाश हो जावे तो क्या भगवान को नहीं मानें - गालियां दे, निन्दा करे, वचन उत्थापे उनको समकित आवेगा ? अपि तु कभी नहीं ।

प्रिय ! सुगडांग या प्रश्न व्याकरण में नारकी को परमाधामी पूर्व भव में करी मिथ्यात् को क्रिया उद्देश के मार देते हैं परन्तु ऐसा नहीं कहते कि तू ने पूर्वभव में जिन मन्दिर बनाया

था या जिन प्रतिमा पूजी थी, स्थानक कराया था, यहां कहने को बहुत हैं लेकिन ग्रन्थ बढ जाने से नहीं लिखते । विद्वानों के लिए इशारा भी असरकारी होता है ।

[प्रश्न] क्यों जी ! ऐसा अर्थ सूत्र में हो तो फिर स्थानकवासी दूसरा अर्थ किस आधार से करते हैं ?

[उत्तर] प्रिय ! आधार तो टीका का ही है । परन्तु जहां जिन प्रतिमा का अधिकार आवे तहां मनमाने गपोडे लगा देते हैं । जिस में भी सब टोले की एक मति नहीं है । कहो ! आप किस का अर्थ सच मानोगे ?

(प्रश्न) हमको तो जो आपने लिखा वो पूर्वाचार्यों का ही अर्थ प्रमाण है । अब आप आगे के तीन पाठों की कृपा करें ।

[2] उक्त सूत्र अ० 5 मूल पाठ ' चेइयाणि य वणसंडे ' टीकार्थ-चेइयाणि त्ति चैत्यवृक्षान् आरामादीनां टब्बार्थ-चैत्यबृक्ष मोटा वन ।

[ए. पी.] ने लिखा है कि देवता के चैत्य' परिग्रह में है । लक्ष्मी जानके पूजते हैं । देखो इनकी धूर्तता ! अव्वल तो पाठ लिख दिया और अर्थ नहीं लिखा । इसका कारण सूत्र में तो 'चैत्य' वृक्ष कहा है । इन्हीं लोगों ने जिन प्रतिमा के अभिप्राय से भोले लोगों को बहका दीए कि जिनप्रतिमा परिग्रह में है । मित्र ! प्रथम तो यह समझना चाहिये कि परिग्रह किसको कहते है ? देखो साधु वस्त्र पात्र उपधि रखते हैं सो मोक्ष साधवा निमित्त । परन्तु ममत्व करे तो वोही परिग्रह है । इसका भावार्थ परिग्रह ममता-मूर्छा को कहा है । जैसे—

यत् न सो परिग्गहो वुत्तो नायपुत्तेण ताईणा मुच्छा परि-ग्गहो वुत्तो । इअ वुत्तं महैसिणा ॥21॥ दश० 6॥

भावार्थ -परिग्रह ममता-मूर्छा को कहा है ।

दूसरा लिखा है कि लक्ष्मी जान के देवता पूजते हैं । बन्धव ! देवता के तो विमाण आदि सर्व रत्नों के होते हैं । तब तो उनको भी पूजना तथा नमोत्थुणं देना चाहिये । परन्तु नमोत्थुणं तो जिन-प्रतिमा सिवाय किसी स्थान पर नहीं दिया है । इसीसे (ए. पी.) का लिखना बिल्कुल मिथ्या है ।

3 उक्त सूत्र अ० 8 (**चेइयट्ठे**) टीका-चैत्यानि जिन प्रतिमा । टब्बा-जिन प्रतिमा साधु प्रतिमा की वैयावच्च करे याने कोई जिन प्रतिमा की आशातना करता होवे तो साधु उस को उप-देशादिक देवे - आशातना टलावे । जैसे व्यवहार सूत्र उ० । 10 । सिद्ध की वैयावच्च करे तो जीव कर्म की निर्जरा करे । अब बतलावो साधु सिद्धों की वैयावच्च किस तरह से करे ? सिद्ध हुवा साधु सिद्धों की प्रतिमा की वैयावच्च करे । देखो ! जैसे आप के गुरु जी के फोटू पर कोई अज्ञानी बालक पेशाब करता हो तो आप उस बालक को उपदेश दे के फोटू बचाओ कि नहीं ? जैसे एक गांव में वैष्णवों के मन्दिर में एक मुखबन्धे साधु की मूर्ति बना कर उसकी आशातना करता था । फिर स्थानकवासी श्रावकों को मालूम पड़ा तो उनके साथ विवाद कर उस साधु की आशातना टलाई अब आप स्वयं विचार लेवें ।

4 अ० 10 साधु (चैत्य) नहीं देखे । वह चक्षु इन्द्री के विषय का वर्णन है । सो घर, हट्ट, तोरण, दरवाजा, नगर, देवकूल,

प्रतिमा आदि चक्षु इन्द्रिय का विषय पोषणे को नहीं देखे । परन्तु मन्दिर जाना प्रतिमा वन्दना आश्रयी नहीं है । ऐसा होवे तो फिर गणधर महाराज प्रतिमा नहीं वन्दने से प्रायश्चित क्यों कहे हैं ? स्वयं ही विचार कर लो । प्रिय ! ऊपर जो चैत्य शब्द का अर्थ लिखा है वो मेरी मति से नहीं, परन्तु श्री भगवान के फरमाये मुताबिक पूर्वधारी आचार्यों ने कहा है, वैसा ही मैंने आपको सुना दिया है ।

ए. पी. ने अव्वल तो पाठ ही आगे पीछे छोड के निशाचर की पर लिखा है। दूसरा अर्थ भी विपरित कूर्ण पूर्ण की तरह जिन-आगम को परस्पर विरोधी बना दिया है । जो (चेइयट्ठे) का अर्थ ज्ञान के वास्ते वैयावच्च करे । तो उनसे पूछना चाहिये कि नया दीक्षित-गिलाणि-रोगी और तपस्वीयों से कौनसा ज्ञान लेवे । प्रिय ! विचारने का विषय तो यह है कि इन लोगों को शब्द ज्ञान भी नहीं है । तो श्री तीर्थंकर भगवान के आशय को कैसे समझते ! देखो **'चेइयट्ठे' 'निज्जरट्ठो'** इन दोनों शब्दों के अन्त में ठ ठो है । जिसका एक ही अर्थ कर दिया । अब इनको क्या विशेषण देना चाहिये !

पूर्व पक्ष-अजी, प्रतिमा क्या आहार पानी करे है ? जो साधु उनकी वैयावच्च करे ।

उत्तर० प्रिय ! केवल आहार पानी करने वाले की ही वेयावच्च करते हैं, तो साधु संघ गण कुल की वैयावच्च कैसे करे ? संघ में श्रावक भी शामिल है । प्रिय ! गीतार्थ गुरु से धारण करे तो कुछ ज्ञानकी प्राप्ति होती है ।

पूर्वपक्ष-आप उक्त पदों का क्या अर्थ करते हैं ?

उत्तर० हमारे तो जो पूर्वाचार्य अर्थ कर गये हैं। वो सुनो ! **संघ गण कुल प्रतिमा** इनकी कोई निन्दा हीलना आशातना करता हो तो उसको उपदेश आदि से आशातना नहीं करने देनी यह वैयावच्च है। जैसे हरकेशी मुनि की जक्ष ने वैयावच्च करी इत्यादि बोलों से सिद्ध हुआ कि साधु प्रतिमा की वैयावच्च करे। जैसा सूत्र में वैसा प्रतिमा छत्तीसी मे, इति ।। 11 ।।

विपाक में सुबाहुप्रमुख। आणंद सरीखा जोयजी।। उववाई अरिहंत चेइयाणि, अंबड प्रतिमा वंदी सोयजी, प्रतिमा।।12।

अर्थ – श्री विपाकसूत्र में सुबाहु आदि श्रावकों का अधिकार है। सो आनन्द श्रावक आदि जिन प्रतिमा वांदी पूजी सो गाथा आठवीं के अर्थ में लिख आये हैं और उववाई सूत्र में चंपानगरी में जिन मन्दिर कहा है सो सूत्र पाठ -

(यत् बहुला अरिहंत चेइया) टीकार्थ और टब्बार्थ को गाथा 10 के अर्थ में लिख आये हैं. अब अंबड श्रावक का अधिकार सुनो। सूत्र पाठ -

अंबडस्स णो कप्पइ अन्नउत्थिया वा अणउत्थियदेवयाणि वा अण्णउत्थियपरिग्गहियाणि वा चेइयाइं वंदित्तए वा णमंसित्तए वा जाव पज्जुवासित्तए वा णण्णत्थ अरिहंते वा अरिहंत चेइयाणि वा

टीकार्थ—गाथा 9 मी में आनन्द अलावे का कर आये हैं।

यहां (**अरिहन्तचेइयाणि वा**) टीकाकार ने अर्हच्चैत्यानि जिन प्रतिमा इत्यर्थं ऐसा अर्थ किया है।

टब्बार्थ — अबड नाम संन्यासी नइ न कल्पै जैन ना श्रमण साधु थी बाह्य, शाक्यादिक अन्य दर्शनी शाक्यादिक अन्य-तीर्थीना देवता हरिहरविरंचिप्रमुख अन्य तीर्थी शाक्यादिकइ परि-ग्रह्या आपणा करिने थाप्या लेखव्या अरिहंतना चैत्य वीतराग प्रति-मा वांदिवा-हाथ जोडीनइ स्तुति करीबो, नमस्कार-पंचांग प्रणाम करीवओ, जावशब्दथकी सत्कारादिकना बोल पर्युपासना मन वचन कायाइ सेवा ना करीवो, अनेरु न कल्पै। तो स्युं कल्पै? अरिहंत साक्षात् वीतराग अनन्त ज्ञानी ते अरिहंतना चैत्य जिन प्रतिमा जिननी थापना ने वांदिवा नमस्कारादि करीवो कल्पै। प्रिय ! सूत्रार्थ में खुलासा जिन प्रतिमा वंदनी गणधर भगवानने फरमा-दिया है तद्यपि 'ए. पी.' लिखता है कि मैं अपूर्व चूर्ण तेरे वास्ते लाया हुं इत्यादि।

पाठको ! गणधरों का चूर्ण तो मैं ऊपर लिख आया हूं। वे जैन जैनेतर में प्रसिद्ध है। परन्तु 'ए पी. ने अपूर्व चूर्ण किस टट्टपुंजीये की दुकान से क्या भाव खरीद किया है ? विचारने का विषय तो यहां गणधर का चूर्ण छोड के टट्टपुन्जीये का चूर्ण कौन विद्वान लेगा ? शायद ए. पी. आप के गुरु और पांच पच्चीस भोली औरतें ले लेवें तो ताज्जुब नहीं।

आगे **'अरिहन्तचेइयाणि वा'** का अर्थ साधु किया है। उस पर जैन० दि० श्री कुन्दकुन्दाचार्य का नाम लेके भद्रिक जीवों को जाल में फंसाने का प्रयत्न किया है और गालियां दी

हैं। प्रियवर ! जैन श्वेताम्बर दिगम्बर किसी आचार्य ने अंबड अलावे '**अरिहन्तचोइयाणि वा**' का अर्थ साधु किया हो तो हम को प्रमाण है। परन्तु किसी आचार्य ने ऐसा अर्थ नहीं किया है। जो ए. पी. उक्त आचार्य महाराज का ग्रन्थ सच मानना कबूल करता हो तो हम श्री कुन्दकुन्दाचार्य के बनाये बहुत ग्रन्थों में श्री जिन प्रतिमा साधु श्रावक को वन्दनी पुजनी दिखला देवें। वर्तमान में भी दिगम्बर जैनी जिन प्रतिमा को मानते हैं। कहो अब तेरा चूर्ण किस हवा में उड गया ? और भी भ्रम रहा हो तो सुनो भग० स० 3 उ० 1 चमरेन्द्र अधिकार [**णण्णत्थ अरहंते वा अरहंतचोइयाणि वा अणगारे वा भावियप्पाणो**] इसमें साधुका तीसरा पाठ अलग है।

प्रिय 'ए. पी.' ! तूं किस लाल लपेटा में आ गया ? ले सुन ! सूत्र में साधु के 13 नाम कहे हैं। श्री सुगडायंग सूत्र अ० 13—

1 समणेति वा 2 माहणेति वा 3 खंतेति वा 4 दन्तेति वा 5 गुत्तेति वा 6 पूतेति वा 7 इसिति वा 8 मुणीति वा 9 कित्तीति वा 10 विदुति वा 11 भिक्खुति वा 12 लूहेतिवा १३ तीरट्ठीतिवा इति।

देखो गणधर महाराजने साधु के तेरह नाम कहे हैं। परंतु चौदमा (**अरिहंतचोइयाणि वा**) नहीं कहा। अब भी कुछ भ्रम रहा है ?

[पूर्व पक्ष] अरिहन्त और प्रतिमा वन्दनीक है, तब तो साधु अवन्दनीक ठहरेगा ?

(उत्तर०) जो तुम साधु अर्थ करोगे तो आचार्य उपाध्याय साधवी भी अवन्दनीक ठहरेगा ।

प्रिय ! जैन सिद्धान्तों के रहस्य को समझो । जैसे एक सेठ के नाम का नौता आवे उसी में सेठ का बेटा पोता आदि सब जीमने को जा सकते हैं । ऐसे ही अरिहंत के नाम में आचार्य उ० साधु 2 आ गया । **(संग्रहनयमत से)** सिद्ध हुआ दूसरे पाठ में प्रतिमा अंबड श्रावक ने वांदी है ।

पाठको ! अन्य सूत्र में नगरी बाग भगवान का समोसरण तथा पुरुष वांदवा जाने के अधिकार में उववाइ की भोलामण दी जाती है । कारण (उववाई) में विस्तार से वर्णन किया है । जिसमें भगवान का समोसरण संक्षेप से लिखता हूं । **चित्र में देखो ।**

प्रिय ! भगवान के समोसरण तीन दिशा में बिंब 'प्रतिमा' स्थापना है । जिसको चतुर्विध संघ वन्दे पूजते हैं और समोसरण में फूल ढींचण 'गोडा' परिमाण होते हैं । अब प्रतिमा वन्दना पूजने में क्या अकलबन्दों को कुछ भी शंका रहती है अपितु कभी नहीं ।

(प्रश्न) फूल सचित्त है । भगवान की द्रव्य पूजा करता होवे तो 5 अभिगम में सचित्त वस्तु बारे मेली किम जावे ?

(उत्तर) प्रिय ! बाहिर रखे वो आपके उपयोग की वस्तु । जैसे पहनने को फूल माला, खाने का पान आदि । परन्तु पूजा की सामग्री नहीं समझना । देखो इसी उववाई सूत्र में वन्दना के अधिकार में गणधर महाराज ने खुलासा मूल पाठ में फरमा दिया है । सो सुनो ! मूल पाठ —

बहवे राइसर तलवर माडंबिय कोडुंबिय इब्भ सेट्ठ सेना-वइ सत्थवाह पभितिआ अप्पेगइया वंदणवत्तियं अप्पेगइया पूअणवत्तिय एव सक्कारवत्तियं सम्माणवत्तियं इत्यादि ।

अर्थ—अनेराइ बहवे घणा राजा मंडलिक ईसर युवराजा तलवर मउडबंदराजा माडंबिय मडबना अधिपति कोडुं-बिय कुटुंबना नायक गजांतलक्ष्मी जेहने नगर सेठ बड़ा सना चतुरंग सेना कटकना नायक सार्थवाह सायतांडासी सोमितना चलावणहार प्रभृतिए आदि देइनइ एकेक पूर्वइं कह्या ते वांदिवा स्तुति करवा तिणइ ज निमित्त आवे, एकेक पूजा जिम पुष्पादिक पूजिये तिम पूजाने इज निमित्ते आवे, इम सत्कार वस्त्रादिक जिम सत्कारने ज निमित्त आवे, सन्मान उठी उभां थाइवो बहुमान देवो तिणो निमित्त आवे ।

लो और सुनो अणुयोगद्वार सूत्र मूल पाठ (**तिलुक्कमहित पूइयेहिं**)

अर्थ—त्रिलोक्य त्रिभुवनपति व्यंतर नर विद्याधर वैमा-निकादिक समुदाय रूप तेणे महित कहतां आनन्दाश्रुवहति दृष्टि से सहर्षपणे निरख्या छे जे भगवन्त तेणे तथा महिता केवल गुणो-त्कीर्तनरूप जे भावस्तव तेणे तथा पूजित कहतां चन्दन पुष्पादिक द्रव्यपूजा करी पूज्या छे जे भगवन्त ।

अब समोसरण का फूलों का समवायंग सूत्र में है। सो सुनो मूल पाठ –

जलथलयभासुरपभूतेणं विटट्ठाबियदसद्धवन्नेणं कुसुमेणं जाणुस्सहप्पमाणमित्ते पुप्फोवयारे किज्जइ ।। 1८ ।।

अर्थ-स्थल कुसुम ते चम्पाजाई प्रमुख जल कुसुम ते कमलादिक भास्वर तेजवन्त प्रभूतघणा नीचा छे बीट जेहना एतले उर्द्ध-मुखे पांचवर्ण फुल्ले करी ढीचण प्रमाण फूलनी पूंज फूल पगर करे इत्यादि ।

प्रिय ! अब आंख मींच के सोचो, मूर्ति पूजा के प्रमाण में कुछ कसर रही है ? देखो ! आप के तेरापंथी ने एक दया उत्थापण के वास्ते कितनी कुयुक्तियाँ तैय्यार करी हैं ? वैसे ही आपको भी एक जिन प्रतिमा न मानने से श्री तीर्थंकर गणधर और पूर्व आचार्यों के वचनों की आशातना करनी पड़ी । तो पिण अन्त का नन्त में तो झूंठ सो झूंठ ही रहेगा । स्मरण रहे! आखिर तो मूर्ति पूजा बगैर मोक्ष नहीं है । कारण आपकी श्रद्धा से आपकी गति देव-लोक को होगी वहां तो मूर्ति पूजना ही पडेगा ! कहो फेर आपको यह संसार वृद्धि की कुयुक्ति करने में क्या फायदा हुवा ? बन्धवो ! इस प्रवृत्ति को छोड के श्री वीतराग देवों के वचन पर आस्ता रख के ऊपर लिखी मूर्ति पूजा की सम्यक् प्रकार श्रद्धा रक्खो। जिससे आपका जल्दी कल्याण हो । इति ।। 12 ।।

रायपसेणीसुरियाभे पूजी । जीवाभिगमविजयसुरङ्गजी ।
धूवं दाउणं जिणवराणं ठवणेस च्चचौथेउपाङ्गजीप्रतिमा. 13

अर्थ--राय पसेणी सूत्र में सुरियाभ देवता ने जिन प्रतिमा की 17 प्रकार से पूजा करी है । यह बात जैनियों में प्रसिद्ध है । तत्र मूल सूत्र पाठ –

एवं खलु देवाणुप्पियाणं सुरियाभे विमाणे सिद्धायथणे अट्ठसयं जिणपडिमाणं जिणुस्सेह पमाण मेत्ताणं संण्णिखित्तं चिट्ठंति। सभाए णं सुहम्माए माणवए चोइए खंभे वइरामए गोलवट्ट समुग्गए बहुओ जिणसकहाओ संण्णिखित्ताओ चिट्ठंति ताओणं देवाणुप्पियाणं अण्णेसि च बहुणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ जाव वंदणिज्जाओ णमसणिज्जाओ सक्कारिज्जाओ सम्माणणिज्जाओ कल्लाणंमङ्गलं देवयं चोइयं पज्जुवासणिज्जाओ तं एयं णं देवाणुप्पियाणं पुव्विं करणिज्जं एयं णं देवाणुप्पियाणं पच्छाकरणिज्जं तं एयं णं देवाणुप्पियाणं पुव्वि पच्छावि, हियाए सुहाए खमाए णिस्सेयसाए आणुगामित्ताए भविस्सइ ।।

भावार्थ - सुरियाभ देवता ने उत्पन्न होते ही विचारा कि मुझे पहिला पीछे कोनसा कार्य हित का, सुख का, कल्याण का, मोक्ष का करना है या भव 2 में साथ चलने वाला है ? तब उक्त देवता के सामानिकदेव तथा पर्षदा के देव हाथ जोड के कहता हुवा "स्वामी इस विमान में सिद्धायतन में 108 जिन प्रतिमा जिनेन्द्र देवों का शरीर प्रमाण याने [जघन्य 7 हाथ उत्कृष्टी 500 धनुष्य की अवगाहना] तथा सुधर्म सभा में जिनेश्वर भगवान की डाढा है। वो आप को या अन्य कितने ही देवताओं को वदना पूजना यावत् सेवा करने योग्य है। यही पहला पीछे हितकारी, यावत् सुखकारी, कल्याणकारी, मोक्षकारी यहीं करनी भव 2 में साथ चलने वाली है।

इसी तरह जीवाभिगम सूत्र में विजय देवता ने पूजा करी है। जिसका फल यावत् मोक्ष गणधर भगवान ने फरमाया है। कितनेक (ए. पी.) सरीखा भोला भाई 'जिन प्रतिमा जिन सरीखी' कहने में हिचकते हैं। परन्तु श्री गणधर भगवान (**धुवं दाउणं जिणवराणं**) यह खुलासा फरमाया है कि धूप दिया जिनराज को। तो तुम लोग गणधरों की माफिक कहते क्यों शरमाते हो ? क्या गणधर भगवान का वचन सच्च नहीं मानते हो ? प्रिय ! जैसे भैरव की मूर्ति को भैरव कहते है। लकड़ी के घोड़े को घोड़ा कहते हैं तो भगवान की मूर्ति को भगवान कहने में क्या हरजा है ? देखो! अंतगडसूत्र में द्वारकानगरी को **पाठ-पच्चक्खंदेवलोग-भूयाए**[1]) कहा है तथा भगवती आदि में (**इंदमहेतिवा**[2]) आदि कहा है। इसी से सिद्ध हुआ कि जिन प्रतिमा जिन सरीखी कहना सूत्र प्रमाण से है।

आगे चोथा उपांग पन्नवणाजी जिसके पद 11 वे में (**ठवणे सच्चे**) कहा है तथा चम्पा आदि नगरी में अरिहंतों का मन्दिर है, सो पीछे लिख आये हैं। देख लेना।

प्रिय ! सूर्याभ देवता के अधिकार में (प्रश्न) [उत्तर] बहुत से हैं। वो हमारी बनाई सिद्ध प्र० मु० में अच्छी तरह समाधान किया हैं। यहां नहीं लिखने का कारण यह है कि (ए. पी.] लश्कर वाले ने प्रतिमा छत्तीसी का वृथा खण्डन करने को कं०

---

1 देवलोक कह द्वारका कह। 2 इंद्र प्रतिमा का मोछव को इन्द्र मोछव कहा है।

प्रकाशपत्र तारीख 3 दिसम्बर 15 अंक 10-11-12-13-15 में लिखा था। उस लेख की समीक्षा हमने इस पुस्तक में लिख दिया है। पाठकों ने भी भली भांति पढ लिया होगा। आगे का लेख हमको नहीं मिला। जिस से जो प्रतिमाछत्तीसो में कहे हुवे सूत्र पाठसे सिद्धकर बतलायेंगे। शायद 'ए. पी.' मायावृत्ति से लेख बन्ध कर पुस्तक रूपे छपावेंगे तो पाठकों को हम सूचना करते हैं कि उनकी समक्षा से हमारी सिद्ध प्रतिमा मु० देख लेनी चाहिये और हमारे को जो उनको पुस्तक मिलेगी तो हम दूसरी आवृत्ति में आगम अनुसार उत्तर दे के इस पुस्तक में और बढ़ा देवेंगे।

प्रिय पाठको ! इतना तो स्मरण में रखना कि श्रीत्रिलोकीनाथ ने ठाम 2 स्थापना मूर्ति 'जिनप्रतिमा' कही है। तो क्या 32 सूत्रों से कोई निषेध कर सकेगा ? हर किसी विद्वान् स्थानकवासी से पूछ लो तो अवश्य कहेगा कि सूत्र में जिन प्रतिमा चली है। तो फिर 'ए पी.' 32 सूत्र में जिन प्रतिमा का खण्डन किस से करेगा ? क्या उनकी स्वकपोल कल्पित बातें कोई विद्वान मानेगा ? अपितु कभी नहीं। जो स्वयं वीर पुत्र है सो तो वीर वचनों पर ही दृढ विश्वास रखेगा। उन्हीं का कार्य सिद्ध होगा। 13 ॥

प्रथम तीर्थंकर मोक्षसिधाया। थूभ कराया तीन जी ॥
जंबूद्वीप पन्नत्ति देखो। सुरहोयभक्तिमें लीन जी। प्रतिमा.14
जंभकदेवता प्रतिमा पूजी। शाश्वतासिद्धायतनबहुजाणजी।
चदपन्नति सूर्यपन्नति। प्रतिमा कही विमानजी। प्रतिमा.।15।

अर्थ – सूत्र जंबुद्वीप पन्नत्ति भगवान ऋषभदेव मोक्ष पधारे

तब शक्रेन्द्र के आदेश से देवों ने तीन चैत्य थूभ कराई है।
सूत्र पाठ-

यत् खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया सव्वरयणामए महइमहालए तओ चेइयथुभे करेह। एगं भगवओ तित्थगरस्स चिइगाए एगं गणहरचिइगाए एगं अवसेसाणं अणगाराणं चिइगाए

टीकार्थ-सर्वस्पष्टं। नवरं सर्वात्मनारत्नमयान् अन्तर्बहिरपि रत्नखचितान् महातिमहतोऽति विस्तीर्णान् आलप्रत्ययः स्वार्थिकः प्राकृतप्रभवः, त्रीन् चैत्यस्तूपान् चैत्याश्चित्ताह्लादकाः स्तूपाश्चैत्य स्वरूपास्तान कुरुत चितात्रयक्षितिष्वित्यर्थ आज्ञा करण सूत्रे।

टब्बार्थ-इन्द्र कहे उतावलो अहो देवानुप्रिय! सर्व रत्नमय मोटा अत्यंत विस्तीर्ण एहवा त्रीणिस्थूभकरो। एकभगवंत तीर्थकरनी चयने विषय, एक गणधर नी चयने विषय, एक अवशेषकता साधु नी चयने विषय, तिवारइं ते घणा देवता जाव स्थूभ करे।

(प्रश्न) यह तो देवता का जीत आचार है। परन्तु धर्म नहीं। सूत्र में धर्म कहा होवे तो मूल सूत्र पाठ बतलाना चाहिए।

(उत्तर) प्रिय! अव्वल तो यह समझो जीत आचार किस को कहते हैं? सो सुनो। जीत (याने) अवश्यमेव करने का काम। जैसे श्रावक समायक प्रतिक्रमण करे सो जीत आचार है और तुम कहते हो कि मूल पाठ बतलाना था, सो लो सुनो-

केई जिणभत्तीए केई जीअमेअंतिकट्टु केई धम्मोत्ति कट्टु गेण्हंति।

टीकार्थ-केचिज्जिनभक्त्या जिने निर्वृत्ते जिनसक्थि जिनवदाराध्यमिति केचिज्जीतमिति पुरातनैरिदमाचीर्णमित्यस्माभिरपीद कर्त्तव्यमिति केचिद्धर्मः पुण्यमिति कृत्वा।

टब्बार्थ—केतलाइक तीर्थंकरनी भक्तिजाणी ने केतलाइक जीत-आपणो आचार छे एहवा कहीने, केतलाइक धर्म जाणी ने। यह उक्त सूत्र में जो जमग देवता का वर्णन सूत्र में से विस्तार कहा है। जिनडाडों, जिन मन्दिर, जिन प्रतिमा की 17 प्रकार पूजा सूर्याभदेवता की तरे समझ लेना। मूल पाठ :-

यत्—तासि णं उत्तरपुरत्थिमेण सिद्धायतणा एस चेव जिणघराणवि गमोति, सव्वरयणामया जिणपडिमा वण्णओ जाव धूवकडुच्छगा।

इसकी टीका और टब्बे में बहुत विस्तार है और उक्त सूत्र में पर्वतों के ऊपर बहुतसा शाश्वता सिद्धायतन कहा है। आगे चन्द्रपन्नति सूर्यपन्नत्ति सूत्र में चद्र सूर्य की राजधानी विमान का वर्णन है। जिसमें जिन मन्दिर, जिन प्रतिमा. जिन डाडों का बहुत अधिकार है। देखना हो तो सूत्र मौजूद है। प्रिय ! जहां देवता प्रतिमा पूजा का अधिकार है, वहां सूर्याभदेवकी भोलामण से सब ठिकाणे सूर्याभ देवता की तरे समझ लेना इति ।। 15 ।।

निरयावलिका पुष्फिया मांहे। चंपानगरी जाणजो। उववाई में वर्णन कीनो, अरिहंत चैत्य प्रमाण जो। प्रति० ।।१६।। तीजे वर्गदशोइदेवता, पूजा नाटक विध जाणजो। चौथे

वर्ग दसोइंदेवीयां । प्रतिमापूजी बहुमानजी । प्रतिमा० १७। पांचवें वर्गे द्वारकानगरी । बारे श्रावक की जोडजी । चपानी परे नगरी शोभे । श्रावक पूजी होडाहोडजी । प्रतिमा १८।

अर्थ— निरयावलि का सूत्र के पंच वर्ग हैं । जिसमें चंपा राजगही शब्द से बनारखी द्वारका आदि नगरियों में चंपा की भोलावण है । सो उववाई में **(बहुला अरिहत चेइया)** पाठ से नगरियों में मन्दिर पीछे लिख आये हैं और चन्द्रमा सूर्य शुक्र बहुपुत्तिया सिरी हिरी धृति कृती आदि देव देवियां ने सूर्याभ की तरे 17 प्रकार की जिन प्रतिमा की पूजा करी है ।

और निसढादी 12 आनन्द श्रावक की तरे प्रतिमा पूजी है । पाठ[**ण्हाया कयबलीकम्मा**] इसीसे यहाँ ज्यादा विस्तार नहीं किया है ।

दसमे अध्ययने गौतम स्वामी, तीर्थ अष्टापद जायजी ।
उत्तराध्ययन अट्ठारमे देखो, कह्यो उदाइरायजी । प्र० १६।

अर्थ—उत्तराध्ययन सूत्र दशमा अ०

दुमपत्तए पंडुयए जहा निवडइ रायगणाण अच्चए ।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम मा पमायए ।। १ ।।

इस गाथा में 14 पूर्वका धणी सदा अप्रमत्त संजम—धारी गौतम स्वामी को श्रीं वीर प्रभुने उपदेश किया है । (**समयं गोयम ! मा पमायए** । इस उपदेश का आशय अति गंभीर है ।

परन्तु आधुनिक समय में उस गंभीर आशय को बिना समझे अनेक विकल्प उठते हैं। उन महाशयको चाहिये कि पूर्व आचार्यों के उस गभीर आशय के अनुसार किये हुवे अर्थ पर ही दृढ़ विश्वास रक्खें। प्रिय ! पूर्वाचार्य नवें दसवें अध्ययन के सम्बन्ध में उक्त गाथा का अर्थ वृत्तिकार ने विस्तार से किया है। उनको सम्पूर्ण लिखे तो ग्रंथ बढ जावे। इसीसे इस सम्बन्ध पर मुद्दे की बात लिख देता हूँ। पृष्ठचम्पानगरी में साल राजा, महासाल जुवराजा, राजा की बेन यशोमती, बेनोई पिट्ठर, भानजा गांगेल है। श्री वीर प्रभु की देशना सुन साल महासाल गागलि भांनजे को राज देके दीक्षा ग्रहण करी थी। 11 अंग पढ कर राजगृही नगरी आया। भगवान से अरज करी गौतम स्वामी कैसे थे, पीछे चम्पा पधारे। भगिनी 1 बेहनोई 2 भानजा 3 इन तीनों को दीक्षा दी ! पीछे राजगृही आते समय साल महासाल पिट्ठर यशोदा गांगेलि ए 5 जन को आत्म भावना भावतों को केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। भगवान के पास आकर पाँचों प्रदक्षिणा देके केवली पर्षदा में बैठे। गौतम-स्वामी वारे, तो भगवान ने फरमाया गौतम ! केवली की आशातना हुई। तब गौतम स्वामी केवली को खमावी मन में चितवे कि मेरे प्रति-बोधितों को केवल ज्ञान हो जाता है, परन्तु मुझे क्यों नहीं होता ? उस समय देव ध्वनि हुई कि आज भगवान वीर प्रभु ने व्याख्यान में फरमाया है–

(यत–अद्य भगवता व्याख्यावसरे एवमादिष्टं यो मुनि-चरःस्वलब्ध्या अष्टापदाद्रौ चैत्यानि वन्दते स तेनैव भवे सिध्यतीति श्रुत्वा गौतमः स्वामिनं पृच्छति-भगवन्! अहमष्टा-पदे चैत्यानि वन्दितुं यामीति। भगवता उक्तं व्रजाष्टापदे

चैत्यानि वन्दस्व । ततो हृष्टो गौतमो भगवच्चरणौ वन्दित्वा तत्रागतः । पूर्वं हि तत्राष्टापदे तादृग् जनसंवादं श्रुत्वा पञ्च-पंचशतपरिवारा, कोडिन्न १ दिन्न २ सेवाला ३ ख्यास्ताप-सा आगताःसन्ति । तेषु कोडिन्नस्तापसः सपरिवार एकान्तरोः पवासेन भुक्तिकरणे मूलकन्दान्याहारयति, सोष्टापदे प्रथम-मेखलामारूढोस्ति । द्वितीयो दिन्नतापसः सपरिवारः प्रत्यह षष्ठषष्ठपारणके परिशटितानि पर्णानि भुंक्ते, सः द्वितीयां मेखलामारूढोस्ति । तृतीयःसेवालतापसः सपरिवारो निरन्त-रमष्टमपारणके सेवालं भुंक्ते स तृतीयां मेखलामारूढोस्ति एवं तेषु गौतमःसूर्यकिरणावलम्बेन तत्रारोढुमारब्धः तेतापसाश्चि-न्तयन्ति, एष स्थूलवपुः कथामत्राधिरोढुंशक्यते वयंतपस्विनोपि अशक्ता एव चिन्तयत्स्वेवैतेषु पश्यत्सु स गौतमःक्षणादष्टापद-पर्वतशिखरमधिरूढः। ते पुनरेवं चिन्तयन्ति यदासाववतरिष्यति तदास्यशिष्या वयं भविष्यामः। गौतमस्वामी प्रासादमध्ये प्राप्तो निज निजवर्ण परिमाणोपताश्चतुर्विंशतिजिनेन्द्राणां भरतकारिताः प्रतिमा ववन्दे । तासां चेव स्तुतिं चकार । जग-चिन्तामणि ! जगनाह ! जगगुरु ! जगरक्खण' इत्यादि स्तुतिं कृत्वा ..)

भावार्थ– भूचर अपनी लब्धि से अष्टापद पर भरत कराया चैत्य (प्रतिमा) वन्दे तो उसी भवमें मोक्ष में जावे, ये बात सुनकर गौतम स्वामी ने भगवान से अरज करी "अष्टापद चैत्य

(प्रतिमा) वंदु ?" तब भगवान रजा दिवि । पाठ-(**समयं गोयम मा पमायए**) गौतम समयमात्र भी प्रमाद मत करो। भगवान की आज्ञा से गौतम स्वामी अष्टापद तीर्थ ऊपर पधारे व भरत-चक्रवर्ती के भराए वे 24 तीर्थंकरों के वर्ण शरीर प्रमाण की जिन-प्रतिमा को वन्दी । जगचिंतामणि आदि चैत्यवंदन किया । पीछे पधारे तो 1503 तापसों को प्रतिबोध दिया इत्यादि बहुत विस्तार है । इसका अर्थ तो स्थानकवासी भी प्रतिमा ही करते हैं ।

(प्रश्न) भरतचक्री को असंख्याकाल हुआ और भगवती श० 8 उ० 9 में कृत्रिम वस्तु की संख्याता कालकी स्थिति कही है । तो भरत भराया (बिंब) कैसे सिद्ध होवे ?

(उत्तर) प्रिय ! भगवती में स्थिति कही सो स्वाभाविक वस्तु की है और (प्रतिमा) रही सो देव सहायता से रही है । जैसे जम्बूद्वीप पन्नत्ति सूत्र मूलपाठ में पहिले आरे का वर्णन वापी पोषरणी आदि कही है । सो विचारो ! शाश्वती तो सूत्र में चली नहीं । 9 कोडा कोड सागर तक कर्म भूमि मनुष्य था नहीं तो बतलावो ! वो वापी आदि किसने कराइ ? जैसे वापी आदि देवताओं की सहायता से रही । वैसे ही भरत भराया बिंब (प्रतिमा) रही । यह बात्त निःशंक है ।

आचारांग सूत्र में तीर्थ यात्रा कही है और जंघाचारण विद्याचारण मुनि ने तीर्थ यात्रा करी है । अब भी गौतमस्वामी के परंपरा वाले मुनि तीर्थयात्रा कर रहे हैं । जैसा सूत्र में था वैसा प्रतिमा छत्तीसी में लिखा । आगे इसी सूत्र का अ० 18 में उदाइ राजा हुवा सो ध्यान दे के सुनो ॥19॥

**प्रभावती राणी नाटक कियो, जिन भक्ति में रागजी ।
गुणतीस अध्ययने चैत्यवंदन को फल भाख्यो वीतरागजी ।प्र.२०।**

अर्थ—उत्त० अ० 18 ।

**सोवीररायवसभो, चेच्चा रज्जं मुणि चरे ।
उदायणो पव्वइओ, पत्तो गइमणुत्तरं ।।४८।।**

प्रिय ! उदाइ राजा का विस्तार से वर्णन सूत्र में है । तथापि मैं प्रभावती राणी ने जिन प्रतिमा आगे भक्ति में लीन होके नाटक किया है वो लिखता । ज्यादा देखना हो तो सूत्र मेरे पास मोजूद है । देख लो—

यत्-तत्रोदायनराज पट्टराज्ञी चेटकराजा पुत्री प्रभावती नामनी श्रमणोपासिका तत्रायाता, सा तस्या मंजूषायाः पूजां कृत्वा एवं भणति 'गयराग दोसमोहो, सव्वन्नू अट्ठपडिहेरसंजुत्तो, देवाधिदेव गुरुओ अइरा मे दंसणं देउ १ एवं उक्त्वा तया मंजूषाया हस्तेन परशुप्रहारो दत्तः उद्-घाटिता सा मंजूषा, तस्यां दृष्टा चातीव सुन्दराम्लानपुष्पमालालंकृता श्रीवर्द्धमानस्वामि प्रतिमा, जाता जिनशासनोन्नतिः अतीवानंदिता प्रभावती एवं बभाण सव्वन्नु सव्वदंसणो अपुणभवो भवियजणमणाणंद जय चिन्तामणि जय गुरु जय २ जिणवीर अकलङ्कि १ तत्र प्रभावत्या अन्तःपुरमध्ये चैत्यगृहं कारित तत्रीयं प्रतिमा स्थापिता तां च

त्रिकालं सा पवित्रा पूजयति । अन्यद प्रभावती राज्ञो तत्प्रतिमायाः पुरो नृत्यति, राजा च वीणां वादयति ।

भावार्थ-विद्युन्माली देवता ने चूलहेमवन्त पर्वत से गोशीर्ष-चन्दन लाय के श्रीवीर प्रभु की प्रतिमा बनाई÷ एक मजूसे में रखके वीतभयपाटण भेजी । बहुत अन्यमति लोक अपना देवकुं-उद्देशी मंजूषा को खोले पिण खुले नहीं । तदा उदाइ राजा की राणी चेडा राजा की पुत्री महासती प्रभावती राणी ने देवाधिदेव को उद्दशी के मजूसे को खोली । श्रीवीर प्रभु की प्रतिमा ले अपने अन्ते-पुर(घर)के मंदिर में स्थापना करी । त्रिकाल अष्ट प्रकार की पूजा करती थी। एक समय प्रभावती रानी जिन भक्ति में अति उत्साहित होके जिन प्रतिमा के आगे नाटक करती हुई । राजा उदाइ वीणा बजा रहे थे इत्यादि ।

इस विषय में प्रिय ! भद्रबाहु स्वामी 14 पूर्वधारी ने आवश्यक सूत्र नियुक्ति में कहा है –

यत् (अंतेउरचेइयहर कारियं प्रभावती ण्हाता तिसंज्झं अच्चेइ अन्नया देवी नच्चई राया वीणं वायेइ)

भावार्थ प्रभावती रानी ने अपने महल के अन्दर जिन मंदिर बनवाया प्रभावती रानी स्नान करके त्रिकाल जिन प्रतिमा का पूजन करती है । एक समय रानी नृत्य पूजा कर रही है और राजा वीणा को बजा रहा है ।

× उस प्रतिमा की प्रतिष्ठा कपिल केवली ने कीनी है ।

प्रिय ! प्रभावती राणी का अधिकार इसी मुजब स्थानकवासीयों की प्राचीन शास्त्र की प्रतों में है। उनमें से करीब 20-25 प्रत मेरे पास मौजूद हैं। यदि कुछ शका हो तो देख लो।

और इसी अध्ययन गाथा 35 में सगर चक्री के 60000 पुत्रों ने अष्टापद तीर्थ की रक्षा के वास्ते खाइ खोदी इत्यादि सम्बन्ध है। उसका भी (स्थान०) व्याख्यान में वाचते हैं। फिर न जाने ये लोग प्रतिमा किस वास्ते नहीं मानते हैं ?

आगे अ० 29 मा बोल 73 में से 15 वां चैत्यवंदना का फल-

यत्--टीकार्थ-प्रत्याख्यानानंतर चैत्यवन्दना कार्या। अथ-एततफल प्रश्न पूर्वमाह (थयथुइ मंगलणं भंते ! जीवे किं जणयेइ ? थयथुइ मंगलेण नाणदंसण चरित्त-तत्तबोहिलाभं जणयइ, नाणदंसण चरित्तबोहि लाभ संपन्ने य जीवे अन्त-किरियं कप्पविमाणोववत्तियं आराहण आराहेइ १५)

भावार्थ—चैत्य वन्दन का फल नाण दर्शन चरित्र बोधबीज का लाभ होता है। बोध बीज के लाभ से जीव अन्तक्रिया **(मोक्ष कल्पविमानोत्पत्तिकां आराधनां आराधयति)।**

प्रिय ! यह चैत्य वन्दन से यावत् मोक्ष कहा है। अब तो आप सन्तोष कर इस वीर वचनों को आराधो। जैसा सूत्र में वैसा प्रतिमा छत्तीसी में ॥ 20 ॥

दशवैकालिक सिज्जंभवभट्ट। प्रतिमाथी प्रतिबोधजी ॥
जाणगभवियशरोर निक्षेपा। अणुयोगद्वार स्यो जोयजी ॥

प्रतिमा० ॥२१॥

अर्थ श्री दशवैकालिक सूत्रके कर्त्ता श्री स्वयंभवसूरि को शान्तिनाथजी की प्रतिमा देख के प्रतिबोध हुआ-

यत्-सिज्जंभवं गणहरं जिणपडिमादसणण पडिबुद्धं ।

और इसी सूत्र के अध्य० 8 गा० 55 ॥

यत्-चित्तभित्ति ण णिज्झाए । नारिं वा सुअलंकियं ।
भक्खर पिव दट्ठुणं । दिट्ठिं पडिसमाहरे ॥ 55 ॥

मतलब जिस मकान में स्त्रियों के चित्राम बने होवे साधु उस मकान में नहीं रहे ।

विद्वानों को विचार करना चाहिये । जब स्त्री की मूर्ति (चित्र) से विषय विकार उत्पन होवे तो श्री वीतराग की निर्विकार शांत-मुद्रा के दर्शन से वैराग्य उत्पन्न क्यों नहीं होवे ? अवश्य होवे । आगे अणुयोगद्वार में **(जाणग शरीर०)**

यत्-जहा को दिट्ठंतो अयं घयकुम्भे आसी अयं महु-कुम्भे आसा से तं जाणयसरीर ।

जैसे जंबुद्वीप पन्नत्ति में - श्री रिषभदेव भगवान मोक्ष पधारे उनके शरीर को इन्द्रादिक ने वन्दन पूजन करी ।

भविय सरीर पाठ—

यत्-जहा को दिट्ठंतो अयं महुकुम्भे भविस्सइ अयं घयकुम्भे भविस्सइ से तं भविय सरीर ।

जैसे तीर्थंकरों के जन्म समय में इन्द्रादिक वन्दन पूजन करे। [आगे निक्षेपे सुनो-]

जत्थयजं जाणेज्जा निक्खेवं निक्खेवे निरवसेसं।
जत्थ वियन जाणेज्जा। चउक्कयंनिक्खिवे तत्थ ।।1।

अर्थ – जहां जिस वस्तु में जितने निक्षेपे जाने, वहां उस वस्तु में उतने निक्षेपे करें और जिस वस्तु में अधिक निक्षेपे नहीं जान सके तो उस वस्तु में चार निक्षेपे तो अवश्य करे।

।। श्री अर्हंतों के 4 निक्षेपा ।।

(1) अर्हंतों का नाम लेना सो नाम निक्षेपा।

(2) अर्हंतों की प्रतिमा थापनी सो स्थापना निक्षेपा।

(3) अर्हंतों का अतीत अनागत काल सो द्रव्य निक्षेपा।

(4) अर्हंतों के 34 अतिशय आदि समोसरणवत् सो भाव निक्षेपा। इस तरह सब वस्तु में समझना। इसमें हमारे स्थानकवासी भाई नाम निक्षेप को वन्दनीक मानते हैं और स्थापना निक्षेप को अवन्दनी मानते हैं।

परन्तु दीर्घ दृष्टि से विचार तो करें! स्थापना में नाम मिले है। नाम से स्थापना में गुण की वृद्धि ज्यादा है। जैसे –

[1] नाम आचारांगकी माला फेरो [2] स्थापना आचारांग पुस्तक वांचो ज्ञान ज्यादा किसमें है ?	[1] नाम जम्बूद्वीप की माला फेरो [2] स्थापना जम्बूद्वीप का पट देखो। ज्ञान ज्यादा किसनें है ?
]1] नाम विलायत की माला फेरो [2] स्थापना विलायत का(नकशा,फोट्) देखने से अमेरिका आफ्रिका जर्मन जापान लंडन आदिका ज्ञान होता है।	[1] नाम हिन्दुस्थान की माला फेरो [2] स्थापना हिन्दुस्थान का (नकशा) फोट् देखो (पूर्व पंजाब राजपूताना दक्षिण आदि पर्वत नदी रेलवे आदि का ज्ञान हो जाता है।
[1] नाम अरिहंतों की माला फेरी [2] स्थापना अरिहतों की मूर्ति 1 देखो मूर्ति में नाम शामिल है। इसीसे नाम से स्थापना में गुण ज्यादा है।	[1] नाम जैनीयों का देव 2 [2] स्थापना जैनीयों का देव की मूर्ति। ज्यादा ज्ञान किसमें है ? स्वयं विचार करें।

प्यारे ! अब सोचो ज्ञान ज्यादा किस में है ? राम सैन्या की तरह. केवल राम 2 से ही सिद्धि नहीं है। जरा मतलब भी समझो। जिस से कल्याण हो।

पूजा विषय गाथा 12 मी के अर्थ में लिख आये हैं। इति।

थूभ कह्याश्रीनन्दी सूत्रे । मुनिसुव्रत विशाला मांय जी ।
व्यवहारसूत्रे आलोयण लेवे । मुनि प्रतिमा पासे जायजी ।प्र. 22।

अर्थ - नन्दी सूत्र मूल (थूभ) विशाला नगरी में श्री मुनिसुव्रत भगवान का थूभ के प्रभाव से नगरी का बचाव हुआ। यह बात स्थानकवासियों में प्रसिद्ध है। व्यवहार सूत्र उद्देसा 1 में आलोवणा अधिकार में जो साधु के प्रायश्चित लागे तो आचार्य, उपाध्याय, बहुश्रुति, घणा आगम का जाण पासे आलोवे 1 कदाचित् आ० उ० नहीं होवे तो संभोगी साधु पासे आलोवे 2 कदाचित् संभोगी० नहीं हो तो अन्य संभोगीं पासे आलोवे। कदाचित् अन्य संभोगी न होवे तो रूपसाधु कने आलोवे 4 रूपसाधु नहीं हो तो पच्छाकडा श्रावक पासे आलोवे 5 पच्छाकडा श्रावक नहीं हो तो-

यत् जत्थेव सम्मं भावियाइं चेइयाइं पासेज्जा कप्पेइ से तस्संतिए आलोइत्तए वा ।

अर्थ-सम्यक् भावित एटले सुविहित प्रतिष्ठित जिन प्रतिमा। (**चैत्यं जिनौकस्तद्‌बिम्बमिति वचनात्**) ऐसी प्रतिमा देवे कल्पे तेहनी पासे आलोचजू ! यह सूत्रार्थ में खुलासा- "जिन प्रतिमा पासे आलोयणा लेवे।'

(प्रश्न) क्या प्रतिमा जी प्रायश्चित दे सकती है ?

(उत्तर) प्रिय ! इस अलावा आगे गाम नगर के बारे में "सिद्धों की साख से आलोवना ले" तो सिद्ध क्या आलोयणा सुन प्रायश्चित देते हैं ?

प्रिय ! यह तो दोनों कारण हैं। कार्य तो अपने पाप का पश्चात्ताप करे, तो अंत करण से पाप को प्रगट करना इसी से देव गुरु की समक्ष आलोचते हैं इति।

निशोथ कल्पदशा श्रुतस्कधे। नगरियां रो अधिकार जी।

चपानो परे मंदिर शोभे। वीतराग वचन लो धारजी प्र.।23।

अर्थ – निशीथ तथा बृहत् कल्प दशाश्रुतखन्ध में चम्पा आदि नगरियां हैं। जिसमें उववाइ सूत्र के परे (**बहुला अरिहतचेइया**) जिन मन्दिर कर शोभायमान है। फर दशाश्रुतखन्ध अ० 8 में श्री वीर प्रभु के पिता सिद्धार्थ राजा ने जिन प्रतिमा पूजो है एवं त्रिशलादे राणी। सो पाठ–

यत् (सयसाहस्सिए य जाए य दाए य इत्यादि)

व्याख्या (सयसाहस्सिए य) लक्षप्रमाणान् (जाए य) यागान् अर्हत्प्रतिमापूजाः भगवन्मातापित्रोः श्री पार्श्वनाथ-सन्तानीय श्रावकत्वात्यजधातोश्च देवपूजार्थत्वात् यागशब्देन प्रतिमापूजाः एव ग्राह्याः अन्यस्य यज्ञस्य असंभवात्। श्री पार्श्व-नाथसन्तानीय ावकत्वं चानयोराचारांगे प्रतिपादितं (दाए य) दायान् पर्वदिवसादौ दानानि।

यह मूल सूत्र में मन्दिर प्रतिमा पूजा का अधिकार है ।इति।23

आवश्यक महिमा शब्द विचारो । भरत श्रेणिक भरा-व्या बिंबजी । वग्गुर श्रावक पुरिमताल को । केइ चैत्य करा-व्या थूभजी ॥ प्र० 24 ॥

अर्थ — उक्त सूत्र लोगस्स में (**कित्तिय वंदिय महिया**) जिस में कीर्ति वन्दना ये दो शब्द भाव पूजावाची हैं और (महिया) शब्द द्रव्य पूजावाची है । टीका में भी ऐसा ही अर्थ किया है। आगे भरतचक्रिका अधिकार सुनो —

यत्-थूभसयभाउआणं । चउवीस चैव जिणघरे कासी ।
सव्वजिणाणं पडिमा वण्णेणं । पमाणेहि नियएंहि ।236।

अर्थ — भरतचक्रवर्त्तिने अपने सौ भाइयों के सौ स्तूप बन-वाए और चौवीस तीर्थंकरों के मन्दिर तथा उनके अन्दर वर्ण तथा प्रमाण करके युक्त उनकी प्रतिमायें (अष्टापद पर) बनवाई और सुनो —

यत्-अकसिणपवत्तगाणं विरया विरयाणंएस खलु जुत्तो ।
संसारपयणुकरणो दव्वत्थए कूवदिट्ठन्तो ।।6।।

मतलब द्रव्य पूजा से संसार पतला करे याने क्षय करे,श्रावक। कूप दृष्टांत । श्री योगशास्त्र आदि में श्रेणिक राजा ने मन्दिर बनाया और 108 सोने के जव * से हमेशा जिन प्रतिमा आगे साथीयो करता और पूजा का अधिकार पीछे लिख आये हैं । आगे वग्गुर श्रावक का अधिकार सुनो

---

* स्था०मेतारजमुनि की ढाल में गाते हैं कि राजा श्रेणिक 108जव कराते थे ।,तब प्रतिमा को कीउं नहीं मानते ?अवश्य मानना चाहिए।

यत् तत्तो य पुरिमेताले वग्गुरइसाण अच्चए पडिमं, मल्लि-जिणा ययणपडिमा अन्ताएवंसि बहुगोट्ठी ।

इसका मतलब यह है कि पुरिमताल नगर में वग्गूर श्रावक ने मल्लिनाथ भगवान का मन्दिर बनवा के सपरिवार जिन-प्रतिमा का पूजन किया ।

इनके सिवाय भी जैन सिद्धान्तों में मूर्ति का अधिकार बहुत है । मगर इम लोगों मे 32 सूत्र मान रखा है जिस से 32 सूत्र का ही प्रमाण दिया है । ज्यादा देखना हो तो महानिशीथ आदि सूत्र में देखो ।

(प्रश्न) अजी ! महानिशीथ तथा संदेहदोलावली, संघ पट्टक में तो मन्दिर मूर्ति का निषेध किया सुनते हैं ।

(उत्तर) प्रिय ! किसी गुरुगम से उक्त शास्त्र पढो । उनमें तो मन्दिर मूर्ति की स्थापना है । उक्त ग्रन्थकर्त्ता जैन आचार्य महाप्रभाविक श्री जिनवल्लभसूरि तथा जिन दत्त सूरिजी हुए हैं । उक्त ग्रन्थ में अविधिचैत्य * और साधु माल आरोप करने तथा चैत्य से साधू का आजीविका करने का निषेध है । उन्हीं महात्माओं के हस्तकमल से प्रतिष्ठा कराये अनेक शिखरबन्ध मन्दिर हैं । वो मारवाड मेवाड गुजरातादि में मौजद हैं । और महानिशीथ का नाम तुम लेते हो तो फरमाओ ! महानिशीथ सूत्र किस ने फरमाया है ?

* अविधिचैत्य-जैसे मान ममता आजीविका आदिके वास्ते करावे।

(पूर्वपक्ष) महानिशीथ अ० 5 में गौतम स्वामी को श्री वीर प्रभु ने फरमाया है ।

(उत्तर) प्रिय ! यह बात आपको मन्जूर है कि महानिशीथ वीर प्रभु ने फरमाया है । तो लो सुनो—

(1) अध्ययन 2 में अष्ट प्रकार से पूजा करनी कही है ।

(2) अध्ययन 3 में मन्दिर बनाने वाला 2 वें देवलोक में जावे ।

(3) अध्ययन 4 में संसार पातला करे इत्यादि । ज्यादा देखना होवे तो महानिशीथ सूत्र मूल पाठ में देख लेना चाहिए ।

विचारो! क्या तीर्थंकरों के वचन ऐसे परस्पर विरुद्ध होते हैं कि अ०2-3-4 में तो मूर्ति मन्दिर कह दिए और पांचवें अध्ययन में निषेध कर देवे (वाह !) पिण आपने तो जैन सिद्धान्त को कुरान पुरान बना दिए !

शायद आप कह दोगे कि हम ऊपर लिखे अध्ययन नहीं मानते । तो आप की अज्ञानता विद्वानों से छिपी नहीं रहेगी, कि 2 3-4 अध्ययन तो नहीं मानना और 5 वां अध्ययन मानना ।

प्रिय ! पांचवां अध्ययन में ही स्पष्ट मन्दिर मूर्ति सिद्ध है । परन्तु आपके जैसे आदमी को **(पीलिया)** हो जावे जब सफेद बस्तु पीली दीखे उस में आदमी का दोष नहीं है । पीलिये का ही दोष है । ऐसे ही आप को असत्य अज्ञान का पीलिया हो रहा है । जिससे 5 वें अध्ययन मे मन्दिर मूर्ति सिद्ध है तो पिण आप को निषेध मालूम होता है । इसी में और

आप क्या करें ? दोष तो असली अज्ञान का है । उस को आप दूर कर दो तो अभी मालुम हो जावे ।

लो सुनो महानिशीथ अ० 5 का मतलब—

उस समय चैत्यवासी, देव द्रव्य भक्षी लिंगधारी भ्रष्टाचारी मिथ्यादृष्टि चैत्य ममता चैत्य से आजीविका करने वाला साधु + श्रीकमल प्रभाचार्य से कहता हुआ "भगवन् आप एक चौमासा करें, आपके उपदेश से हमारे बहुत मन्दिर हो जावेंगे" यहां चैत्यवासी ने अपनी ममता आजीविका निमित्त अर्ज करी है । उस पर श्री आचार्य महाराज ने फरमाया **(जइवि-जिणालए)** यद्यपि जिन मन्दिर है । इसका मतलब जिन मन्दिर याने विधि + चैत्य की स्थापना करी । परन्तु उस भ्रष्टाचारी की ममताभाव के कहने पर आचार्य महाराज ने कहा है **(तहावि सावज्जमिणं नाहं वयामि)** जिन मंदिर हो तो पिण तुम्हारा जिनआज्ञा विरुद्ध कार्य सावद्य है, ऐसा वचन मैं नहीं बोलूं तो मन्दिर कराना कहां रहा इत्यादि जैसे कोई आजीविका-इस लोक परलोक की वांछा से सामायिक पोसह आदि करे तो उस को अविधि जाण साधु निषेध करे । परन्तु यह नहीं समझना कि सामायिक पोसह का निषेध हो गया ।

---

* विधि चैत्य 5 प्रकार-.मंगल० भक्ति० निश्राकृ० अनिश्राकृ० शाश्वता ।

* साधु जिन मंदिर का उपदेश देवे । परन्तु आप मंदिर में निवास या ममत्व नहीं करे या उसी से आप की आजीविका नहीं करे ।

प्रिय ! अविधि का निषेध करने से विधि की स्थापना आप से ही हो गई । उसी से उक्त 3 शास्त्र में विधि चैत्य का मंडन और अविधि चैत्य का खंडन सिद्ध हुआ । 32 सूत्र में मूर्ति है । जैसा सूत्र में वैसा प्रतिमा छत्तीसी में । इति ।।

वादी कहे आ तो पंचांगी । म्हें तो मानां मूल जी ।

वज्रभाषा बोले ऐसी । नहीं समकित को मूलजी ।।प्र.25

अर्थ–यह ऊपर 32 सूत्र से मूर्ति सिद्ध है । इनको देख के कितने ही कह देते हैं कि यह तो पंचांगी है । हम तो मूल–सूत्र को मानते हैं ।

प्रिय ! यह भाषा कैसी वज्र समान है ! वज्र से तो एक ही भव में मरणो होवे, परन्तु ऐसी भाषा से तो भव 2 चतुर्गति परिभ्रमण करना पड़ता है । कारण अर्थ श्री अरिहंत फरमाते हैं और सूत्र गणधर रचते हैं । यत् (**अत्थं भासई अरहा सुत्तं गंथंति गणहरा णिउणा**) ए अणुयोगद्वार का वचन है । अब विचारो, यह अर्थ अरिहंतों के फरमाये नहीं मानना और भद्रिक जीवों को फसाने के लिये छलबाजी करके कहना कि हम मूल सूत्र मानते हैं । तो हम ऊपर सूत्रों का पाठ लिख आये हैं, उनहीं को क्यों नहीं मानते हो ? श्री वीर प्रभु के वचनको नहीं मानने वाले में समकित होवे ? अपितु न होवे इति ।

पंचांगी तो कही मानणी । सुणसूत्र की साखजी ।।

समवायंगेद्वादशांगहुंडी, जिनवर गणधर भाषजी ।।प्र.26।

अर्थ–मूल सूत्र में पंचांगी माननी कही है । सुनो ! सूत्र समवायंग में 12 अंगकी निर्युक्ति आदि माननी कही है ।

यत्-आयारे णं परित्ता वायणा संखिज्जा अणुयोगदारा संखिज्जा वेढा संखिज्जा सिलोगा संखिज्जाओ निज्जुत्तिओ संखिज्जाओ पडिवत्तिओ संघयणीओ इत्यादि ।

ए आचारंग सूत्र की निर्युक्ति संख्याती कहीं है। इसी तरह 12 अंगकी निर्युक्ति मूल पाठ में है।

शतकपचवीस उद्देसो तीजो । भगवती अंग पिछाणजी ।।
सूत्र अर्थ निर्युक्ति मानों । या जिनवरकी आण जी ।।प्र.27

अर्थ-सूत्र भगवती शतक 25 उ० 3 मूल पाठ-

यत्-सुत्तत्थो खलु पढमो । बीओ निज्जुत्तिमीसिओ भणिओ तइओ य निरवसेसो । एस विहि होइ अणुयोगे ।। 1 ।।

अर्थ-पहली सूत्र अर्थ दूजी निर्युक्ति के साथ कहना तीजी निरवशेष । इसीमें टीकाचूर्णि भाष्य का समावेश होता है।

अनुयोगद्वार सूत्र में देखो । निर्युक्ति की बात जी ।
नंदी में निर्युक्ति मानी । छोडो हठमिथ्यात्व जी ।। प्र.28

अर्थ—अणुयोगद्वार सूत्र में निर्युक्ति यत् (**सुत्ताणुगमे निज्जुत्ति अणुगमे य**) मतलब-सूत्र और निर्युक्ति दोनों माननी कहा है। आगे नंदी सूत्र सुनो —

सुत्तत्थो खलु पढमो बीओ । निज्जुत्तिमीसिओ भणिओ ।
तइओ य निरवसेसो । एस विहि होइ अणुओगे ।। 1 ।।

अर्थ – पूर्व में लिख आये हैं प्रिय ! इतना मूल सूत्र के प्रमाख को नहीं मान के मिथ्या (झूठ) हठ करना क्या विद्वानों का काम है ? आत्म कल्याण चाहते हो तो इस झूठे कदाग्रह को छोड़ दो। वीर प्रभु के वचनों पर, आस्था रक्खो।

वादी कहे वा तो निर्युक्ति। गई काल में वीत जो।
नवी रची आचारिज। ज्यारि किम आवे परतीत जो।। प्र.29

अर्थ—मूल सूत्र में बोलने को जगह न मिली तब कितने गाडरी प्रवाह लोगों को भ्रम में डालते हैं कि सूत्र में कही वो पंचांगी इस काल में विच्छेद हो गई और अभी जो है वो आचार्यों ने नई रची है। उनको क्या परतीत ? मन्दिर प्रतिमा का अधिकार पीछे से मिला दिया होगा।

सूत्र रह्या निर्युक्ति वीतो, या थे किम करी जाणी जी।
आचारिज रचिया नहिं मानों, सुणजो आगे वाणी जी।
प्रतिमा० ।। 30 ।।

अर्थ–यह आप का कहना तद्दन मिथ्या है। लो ! जो पंचांगी इस काल में विच्छेद हो गई तो फिर 32 सूत्र किस तरह से रहे ? या फिर क्या लुंकाजी के पढ़ने के वास्ते ही 32 सूत्र की रक्षा करी और किसी सूत्रों की नहीं करी। जो उधई आदि खा गया कहते हो तो क्या आप जैसे उन जानवरों को ज्ञान था सो 32 सूत्र तो रख दिये और सब खा गये। क्या आप लोगों की विद्वत्ता का परचा है ! कहां तक तारीफ करें !

प्रिय ! जैसा 32 सूत्र पूर्वाचार्यों ने पुस्तकारूढ किया है वैसे ही बाकी सूत्र पंचांगी ,पुस्तकारूढ करी है । जो पंचांगी नई रची कहो तो 32 सूत्र भी नया रचा हुवा मानना पडेगा । निर्युक्ति आदि में नई गाथा मिला दी तो मूल 32 सूत्र में नई गाथा मिलाने में उनकी कलम पकड़ने वाला कौन था ? देखो, उन आचार्य महाराज का वचन, जिस जगह जो बोल विसर्जन था । उस जगह कह दिया कि तत्वं केवली गम्यं । प्रिय ! केवल कदाग्रहवश हो के कहोगे कि हम तो आचार्य की रची पंचांगी नहीं मानें । तो आगे सुनो—

तीन छेद भद्रबाहु रचिया । पन्नवणा श्यामाचार जो ।
दशवैकालिक सिज्जंभवकृत,निशीथ विसाख गणधार जो।प्र.31
देवड्डिगणो जो नन्दी बनाई । घणा सूत्र का नामजी ।
ज्यों वृत्ति का कर्त्ता जाणो । भद्रबाहु स्वाम जी ।।प्र.32

अर्थ—श्री भद्रबाहु स्वामी आचारांगादि 11 सूत्र की निर्युक्ति और 3 छेद सूत्र (**कल्प व्यवहार दशाश्रुतस्कंध**) बनाया है और 23 वें पाट श्यामाचार्य ने पन्नवणा सूत्र बनाया है और श्रीशयंभवसूरि दशवैकालिक बनाई । श्री वेशाखागणी लघुनिशीथ वनाई । श्रीदेवर्धिगणी नन्दी बनाई । जिसमें 73 सूत्र 14000 पइन्ना मानना कहा है ।

इस जगह 10 मिनट आंख मींच के सोचो कि भद्रबाहु स्वामी का 3 सूत्र मानना और 10 नहीं मानना । दूसरा 23 वीं पटा के 27वें पाट के आचार्य काबनाया मानना और भद्रबाहु-

स्वामी की नियुंक्ति नहीं माननी, यह कितनी विचार की बात है!

प्रिय ! जब बोल चाल को निर्णय करना है तब तो टीका आदि की शरण लेते हैं। जब मूर्ति मानने का साबित होता है तब आप पंचांगी मानने में हिचकते हैं। परन्तु कृतघ्नपणे का कितना पाप है, वो हृदय में रखना जो टीका न होती तो आप का टब्बा कहां से बनता ? जो टब्बा नहीं होता तो आपकी क्या दशा होती ? खैर आगे सुनो—

प्रकरणमांसुं ढालचोपइयां। प्रतिमा देवो गोपजी।
तीजो महाव्रत चोडे भांगो। जिनआज्ञा दीवी लोपजी ।।प्र.33
एक अक्षर उत्थापे जिणरो। वधे अनन्त संसारजी।
सूत्र का सूत्र नहीं माने। ए डूबे डूबावणहार जी ।। प्र.34

अर्थ—सूत्र ग्रंथ प्रकरण से ढाल चोपाइयां बनाते हैं। जिस में जहां मन्दिर प्रतिमा का अधिकार आता है वह कितनेक तो अधिकार निकाल देते हैं। जैसे रामचरित्र, गजसिंहचरित्र, वीरश्री-कुसुमश्री चरित्र, जय विजय चरित्र, मंगल कलश, जंबूचरित्र आदि सैकड़ों ढाल चौपाइ हैं। कितने ही गोप देते हैं। कितने ही हरताल सफेदा लगा देते हैं। कहो इस में ग्रन्थकर्त्ता की चोरी - भगवान की चोरी से क्या तुम्हारा माना हुआ तीजा व्रत रह सकता है ? अपितु कभी नहीं ।। 33-34 ।।

प्रिय ! जैन सिद्धातों में एक अक्षर मात्र भी न्यूनाधिक परूपणा से अनन्त संसार की वृद्धि हुवे तो फेर सूत्र का सूत्र ही नहीं माने उनका तो कहना ही क्या। प्रिय ! जैन सिद्धान्त तो

(तिण्णाणं तारयाणं) है। परन्तु आप तो डुबाणं डुबा वीयाणं। बन बैठे हैं। ज्यादा आपको क्या विशेषण देना चाहिये।

बत्तीस सूत्रों में प्रतिमा बोल। चतुरां ले लो जोयगी।
भावदया मुज घटमां व्यापी, उपकारबुद्धि छे मोयजी ।।
।। प्र. 35 ।।

अर्थ-बत्तीस सूत्रों में प्रतिमा का अधिकार है, सो हमने बतला दिया है। वो चतुर पुरुष जान गये होंगे। प्रिय! मेरे किसी से द्वेष भाव नहीं है। बल्कि कितने ही भद्रीक जीव उलटे रास्ते जा रहे हैं। उन्हीं पर भाव दया ला के उपगार बुद्धि से ही प्रतिमा छत्तीसी बनाई थी। जिस के मोहकर्म का क्षयोपशम होगा वही इस बात को धारण करेगा। मेरा तो कहना है कि सर्व जीव जिन शासन के रहस्य का पान करो और आत्म कल्याण करो! करो!! करो!!!जल्दी करो ।। 35 ।।

प्रतिमा छत्तीसी सुणो भवि प्राणी। हृदये करो विचार
पंथ छोडो समकित आराधो। पामो भवनो पारजो ।।प्र.36

अर्थ—प्रतिमा छत्तीसी सुन के हृदय में विचार करो। परन्तु जब तक पक्षपात है तब तक सीधामार्ग मिलना दूर है। इसी वास्ते पक्षपात छोड़ के जिनवचनों पर आस्था रखें तो संसार से जल्दी पार हो जावे ।। 36 ।। इति ।

कलश:-रायसिद्धारथ वंशभूषण, त्रिशला देवी मायजी।
शासन नायक तीर्थ ओसीया, रत्न विजय प्रणमे पायजो ।।
साल बहुत्तर जेठ मासे, सुद पञ्चमी गुरुवार जी।
गयवर सरणो लियो तेरो, सफल भयो अवतारजी ।।37।।

अर्थ—सिद्धार्थ राजा के वंश में भूषण समान जिन्हों की माता त्रिशलादे है। ऐसे जो श्री वीर प्रभु शासन के नायक जिन्हों के बिंब की प्रतिष्ठा श्री पार्श्व प्रभु के 6 ठे पाट पर श्री रत्न प्रभसूरि ने वीरनिर्वाण के 70 वर्ष गया तब स्वहस्ते करी है। जिनको आज 2371 वर्ष हुए हैं। ऐसा जो तीर्थ ओसीया नगरी में है। जिन के चरण कमल में श्री रत्नविजयजी प्रणाम कर रहे हैं। उक्त तीर्थ की यात्रा मैंने हर्ष उत्साह से करी है। श्री त्रिलोक पूजनिक वीर प्रभु से अर्जी करी है। अहो ! प्रभु आपकी अद्भुत शरण तारण तरण जान के मैंने आपका शरणा लिया है, मुझे भी आप सरीखा बना दो। सफल अवतार हुवा जो मैंने आज वीर प्रभु की यात्रा करी। प्रतिमा छत्तीसी की रचना संवत् 1972 जेष्ठ सुदी 5 गुरुवार को करी है ॥ इति। शुभम् ॥

अब जो असन्तोषचन्दजी के उपदेश प्रतिमा नकल निरूपण का जन्म हुवा है। उन्ही की महिमा सुन लीजिये। अव्वल तो स्तवन तुका सवैया पेस्तर बणा हुवा था, इसी में असन्तोषचन्दजी ने क्या बहादुरी करी? दूजे छोटी सी भाषा की पुस्तक ही अन्य के पास शोधन कराई तो क्या वो गणधारी की आज्ञा में समझ सकेगा ? अपितु नहीं। पुस्तक छपाने के कारण तो मैंने सुनाया कि सन्तोषचन्दजी पहले तो ठीक प्ररूपणा करते थे, परन्तु उन्हीं का एक साधु (केसरीमल) मुनि ने श्रीहर्षमुनि जी के पासे फलोधि में जैन दीक्षा ले ली। वो कदाग्नि समावेश न हुई। जिससे आपकी ज्वलंतज्वाला प्रगट कर गोडवाड में अपनी नामवरी फैलाई है। खैर ! इनके उत्तर भी इसी किताब में आ गये हैं। विशेष देखना हो तो हमारी बनाई सि० प्र० मु० नामकी पुस्तक देख लेना।

अब हम (ए, पी.) ने तथा असन्तोषचन्दजी मोतीलाल

आदि को हित शिक्षा देते हैं। हे बंधव ! आपने लिखा कि घेवरचन्द ने गप्पमारी तथा भूठ लिखा है। यह आपका वचन कैसा है सो विचारो ! श्री तीर्थंकर गणधर पूर्व आचार्य का वचन था जिसे मैंने लिखा था। उसको आप ने गप्प तथा भूठ कह दिया। प्रिय ! मैंने आपका टोला छोड़ दिया तो मेरे पर द्वेष कर इतनी गालियां दीं। उससे संतोष न हुवा हो तो और 100-200 देनी थी। परन्तु श्री तीर्थंकर गणधरों के बचन को गप्प भूठ कहना ए आप को लाजिम नहीं था। शायद किसी शासन द्वेषी के सिखाने से कह दिया हो तो अब भी इस बात का प्रायश्चित ले के अपनी आत्मा को शुद्ध करो। मुझे आशा है कि दोनों महानुभाव इस किताब को पढ़ के अपना नरभव सफल अवश्य करेंगे ।।

दर्शन से दुःख मिटे-पूजन से पाप कटे

मन्दिर में जाकर भगवान के दर्शन करने की इच्छा होवे तब एक उपवास का, दर्शन के वास्ते अपने स्थान से उठे तब दो उपवास का, मन्दिर जाने को तैयार हो तब तीन उपवास का, मन्दिर की तरफ जाने लगे- एक कदम रखे तब चार उपवास मन्दिर की तरफ चलते चलते पांच उपवास का पुन्य होता है, प्रभु की प्रतिमा को भाव से वंदन करने पर अनन्त पुन्य होता है। पूजन करने पर उससे सौ गुना पुन्य होता है।

सामायिक पांचवीं कक्षा का धर्म है। भगवान का दर्शन-पूजन चौथी क्लास का / चौथी पास किए बिना पांचवीं में बैठने वाला फैल हो जाता है। इसलिए सामायिक करने वालों को भी मन्दिर में प्रभुजी के दर्शन-पूजन करने ही चाहिए।

सवैया ॥

प्रतिमा छत्तीसी मैं रची, बत्तीस सूत्र की साख ।
जैसे गणधर भाषिया, तैसा दिया में दाख ॥ 1 ॥
वृथा खंडन तेहनो, नकल निरूपण नाम ।
दूजो 'ए.पी.' ने कियो, जिन आज्ञा विरुद्ध काम ॥2॥
गलीव भावो गालीयां, नहीं न्याय लवलेश ।
कहलो फैलायो जैनमें, जाने कोरट केस ॥ 3 ॥
दोनों पर दया करी, विलास बणायो सार ।
पक्षपात दूरे करी, वांचे नर और नार ॥ 4 ॥
छपतो लिखतो देखतो, अशुद्धि रही हो कोय ।
न्यूनाधिक परमाद से, मिच्छामि दुक्खडं मोय ॥ 5 ॥
उगणोसे बहुत्तरे, माघ मास सुदी जान ।
तोखो तिथि तोजको, आदितवार व्याख्यान ॥ 6 ॥
चरम तोर्थंकर वीर को, तोर्थ ओसीया जान ।
गयवरचन्द शरणो लियो, पाम्या जन्म परमाण ॥7॥

इति मुनि श्रीगयवरचंदजी विरचित

गयवर विलासः सम्पूर्णः ।

यात्रा करें ! वन्दन करें ! स्तुति करें !

卐

पहले सौधर्म देव लोक में — बत्तीस लाख जैन मन्दिर हैं।

दूसरे ईशाब देवलोक में — अट्ठाइस लाख जैन मन्दिर हैं।

तीसरे सनत्कुमार देवलोक में — बारह लाख जैन मन्दिर हैं।

चोथे माहेन्द्र देवलोक में — आठ लाख जैन मन्दिर हैं।

पांचवें व्रह्मदेवलोक में — चार लाख जैन मन्दिर हैं।

छट्ठे लातक देवलोक में — पचास हजार जैन मन्दिर हैं।

सातवें महाशुक्र देवलोक में — चालीस हजार जैन मन्दिर हैं।

आठवें सहस्रार देवलोक में — छः हजार जैन मन्दिर हैं।

नवें आनत देवलोक में
दशवें प्राणत देवलोक में } चार सौ जैन मन्दिर हैं।

इग्यारवें आरपा देवलोक में
बाहरवें अच्युत देवलोक में } तीन सो जैन मन्दिर हैं।

नो गौवेयक देवलोक में — तीन सो अठारह जैन मन्दिर हैं।

पांच अनुत्तर देवलोक में — अति भव्य पांच जैन मन्दिर हैं।

कुल मिलाकर वैमानिक देवलोक में चौराशी लाख सत्ताणवे हजार तेइस जैन मन्दिर हैं। जिन्दा रहने के लिए जितनी हवा (सांस) की आवश्यकता है। उतनी ही जैन धर्म में मन्दिर व मूर्ति पूजा की आवश्यकता है। जैन मन्दिर जिन्दावाद ! मूर्ति पूजा सदा आबाद !!

गणेश प्रिन्टिंग प्रेस, लोहिया बाजार, ब्यावर ☎ 51751